भारतीय साहित्य के निर्माता

माधवदेव

सत्येंद्रनाथ शर्मा

साहित्य अकादेमी

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। नीचे बैठा है मुंशी, जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

माधवदेव

लेखक

सत्येंद्रनाथ शर्मा

अनुवादक

आनंद कुशवाहा

साहित्य अकादेमी

Madhavadeva : Hindi translation by Anand Kushwaha of Satyendranath Sarma's monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi (1986), Rs 5.

प्रथम संस्करण : 1986

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700 029
29, एलडाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

मूल्य
पाँच रुपये

मुद्रक
स्वतन्त्र भारत प्रेस,
दिल्ली 110 006

अंतर्वस्तु

1

प्रारंभिक जीवन

शंकरदेव तथा माधवदेव सोलहवीं सदी के दो बेजोड़ व्यक्तित्व हैं जिनके बहुविध योगदान ने असम में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रवर्तन किया। वैष्णव परंपरा के अनुसार उनको सम्मान से 'महापुरुष' कहा जाता है। आध्यात्मिक एवं धार्मिक गुरु होने के नाते शंकरदेव ने अपने परमप्रिय शिष्य माधवदेव को वैष्णव सूत्रों व आदर्शों की दीक्षा दी और अपनी मृत्यु वेला में उनको असम के वैष्णव समुदाय के नेतृत्व के लिए अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उनके बीच निकट व घनिष्ठ रिश्ते को ध्यान में रखते हुए वैष्णव रचनाएँ प्रायः उनकी तुलना **भागवत-पुराण** के कृष्ण तथा उद्धव के साथ करती हैं। कहा जाता है कि शंकरदेव के सबसे बड़े पुत्र रामानंद जब आध्यात्मिक अनुदेश की प्रार्थना के साथ, मृत्यु शय्या पर पड़े अपने पिता के पास गये, तब महामुनि ने अपने पुत्र को को माधवदेव के ही पास भेजा, जिनमें अपने उत्तराधिकारी के रूप में उन्होंने अपनी समूची आध्यात्मिक शक्ति एवं ऊर्जा का संचार कर दिया था। असम में वैष्णव पुनरुत्थान के ये दो प्रवर्तक पिछली चार सदियों से घर-घर में जाने जाते रहे हैं और अब भी परंपरावादी संप्रदायों में दैवी अवतार माने जाते हैं।

माधवदेव का जन्म शंकरदेव की भाँति सुख-सुविधा संपन्न स्थितियों में नहीं हुआ था। कायस्थ जाति के उनके पिता गोविंदगिरि वर्तमान बाङ्लादेश के रंगपुर ज़िले में बाण्डुका के निवासी थे। वे पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में मध्य असम स्थित, आज के नौगांव जिले की एक जगह बारडोवा में आ बसे। यहीं कायस्थ जाति की एक लड़की से उन्होंने अपना दूसरा व्याह रचाया। मनोरमा नाम की यह लड़की शंकरदेव की दूर की रिश्तेदार थी। कछारी छापों की वजह से नवदंपति को बारडोवा छोड़ना पड़ा। हरि सिंह उजीर नाम के एक सज्जन

उन्हें लखीमपुर ज़िले में स्थित आज के नारायणपुर स्थान के निकट लेतेकुपुखुरी ले गये। उन्हीं की शरण में गोविंदगिरि ने पत्नी सहित कई वर्षों तक सुखपूर्वक जीवन-यापन किया। माधवदेव का जन्म यहीं 1489 में हुआ। सोलहवीं तथा सत्रहवीं सदी के धर्मगुरुओं की मध्यकालीन जीवनियों में इन दो महान् वैष्णव सुधारकों का जन्म दिन तो नहीं, इस पार्थिव विश्व से उनके प्रस्थान के वर्षों का उल्लेख अवश्य मिलता है। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी की कुछ परवर्ती जीवनियों में ही जन्मवर्षों का अंकन समुचित समझा गया। वैष्णव परंपराओं में यह विचार बराबर बना रहा है कि माधवदेव एक सौ सात साल ज़िंदा रहे और शक संवत् 1518 (ईस्वी 1596) में उन्होंने अंतिम साँस ली। संभवतः इन्हीं दो प्रकल्पनाओं के आधार पर परवर्ती जीवनी-लेखक उनका जन्म शक संवत् 1411 (ईस्वी 1489) में होने के निष्कर्ष पर पहुँचे।[1]

एक मुखर और स्वस्थ शिशु के रूप में माधवदेव बच्चों के सभी खेलों में सक्रिय और सबसे आगे रहे। उन्होंने हरिसिंह उज़ीर को भी उनके काम में सहायता की। स्वतंत्र रूप से आजीविका चलाने में असफल रहने पर गोविंदगिरि ने अपना भाग्य कहीं और आज़माने का फ़ैसला किया और सपरिवार पुराने मित्रों की तलाश में निकल पड़े किंतु उन्हें अनुदार तथा उदासीन पाकर वे बहुत खिन्न हुए। जीवनियों में यह उल्लेख मिलता है कि आजीविका-विहीनता की इस अवधि में परिवार को दिन में एक भोजन पर अथवा कई दिनों तक विना भोजन के रहना पड़ता था। अंततः गोविंदगिरि अपने पुत्र व पत्नी के साथ घाघरी माजी के पास गये। गोविंदगिरि ने बाण्डुका में रहते हुए उनकी बहुत सहायता की थी। माजी ने अपने पुराने अन्नदाता को पहचाना तथा उन्हें और उनके परिवार को वर्षों तक अन्न एवं आवास की सुविधा दी। यहीं राउतातेंबुवानी स्थित घाघरी माजी के घर में रहते हुए ही एक कन्या का जन्म हुआ जिसको उर्वशी नाम दिया गया। लेकिन चूँकि इस बस्ती में कोई कायस्थ-परिवार नहीं

[1] सत्रहवीं सदी के मध्य में रामानंद द्वारा लिखी गयी इन दो संतों की जीवनी '**गुरुचरित**' में यह उल्लेख मिलता है कि कूच बिहार के राजा लक्ष्मीनारायण (1585-1622) को अपना परिचय देते हुए माधव देव ने बताया कि वे पचहत्तर (सत्तरी वत्सर मोर पंचम अधिक) वर्षों के हैं। यदि हम इस मुलाकात का संभाव्य समय 1585 मानें तो 1596 में मृत्यु के समय माधवदेव 85 या 86 से अधिक नहीं हो सकते थे। यदि ऐसा ही हो तो माधवदेव का जन्मदिन 1510 के पहले नहीं रखा जा सकता। किंतु रामानंद के इस विचार की वैष्णव परंपरा से पुष्टि नहीं होती और अनेक जीवनियों में वर्णित उनके क्रियाकलाप शंकरदेव से संगति में नहीं बैठते, जब तक कि शंकरदेव के जन्मदिन को कम से कम 20 साल आगे न खिसका दिया जाय। बहरहाल, असम के वैष्णव संप्रदाय ने आग्रहमुक्त रूप से शक संवत् 1371 तथा 1411 को क्रमशः शंकरदेव तथा माधवदेव के जन्म वर्षों के रूप में स्वीकार कर लिया है।

रहता था, गोविंदगिरि ने सामाजिक संसर्ग का अभाव अनुभव करते हुए कुछ सालों बाद धुआहाट-बेलगुरी चले जाने का फैसला किया। वहाँ शंकरदेव तथा उनके परिजनों समेत अनेक कायस्थ परिवार रहते थे और वैष्णव-संप्रदाय के महान प्रवर्तक अपनी आस्था का वहीं से प्रचार कर रहे थे। वहीं शंकरदेव के एक तरुण वैष्णव भक्त के साथ उर्वशी का विवाह हुआ।

अपनी पत्नी को अपने दामाद के संरक्षण में छोड़ते हुए गोविंदगिरि तथा उनके पुत्र माधव रंगपुर ज़िले के अपने पूर्वजों के स्थान बांदुका चले आये जहाँ गोविंदगिरि की पहली पत्नी से जन्मे अब तरुण हो चुके पुत्र दामोदर (कुछ जीवनियों के अनुसार रूपचंद्रगिरि)ने उनका हार्दिक अभिनंदन किया। अब माधवदेव ने किसी राजेंद्र आचार्य द्वारा चलाये जा रहे संस्कृत टोल(संस्कृत पाठशाला) में प्रवेश लिया, वैदिक ऋचाओं तथा ग्रंथों में पूर्ण पारंगत हुए और लेखा-जोखा (कायस्थ वृत्ति) का व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त किया। इसी बीच गोविंदगिरि का देहावसान हो गया और माधवदेव अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद कुछ और साल अपने सौतेले भाई के साथ पूर्वजों की संपति के भागीदार बने रहे। बाद में पूर्वजों की सम्पत्ति से संबंधित पारिवारिक विवाद उभरने पर उन्होंने पितृसंपदा पर अपना दावा छोड़ दिया और धुआहाट-बेलगुरी लौट जाने का फ़ैसला किया। वहाँ उनकी माँ अपनी बेटी तथा दामाद गयापाणि के साथ रह रही थीं। ब्रह्मपुत्र की धारा में नाव से पूर्वी असम आते माधवदेव को अपनी माँ की गंभीर बीमारी की सूचना मिली। माँ की हालत ठीक होने के लिए माधवदेव ने देवी दुर्गा की विशेष पूजा का मन में अनुष्ठान किया। घर पहुँचने पर उन्होंने माँ को क्रमश: ठीक होते पाया और इसलिए पतझर में पूजा करने का संकल्प किया। उन्होंने अपने साले गयापाणि से देवी-प्रतिमा के सामने बलि चढ़ाने के लिए एक बकरा लाने का अनुरोध किया। घोर वैष्णव गयापाणि ने टालमटोल करते हुए तब तक इस ज़िम्मेदारी से बचने का प्रयास किया जब तक कि उन्हें बरबस यह नहीं कहना पड़ा कि उनकी आस्था देवी के समक्ष बलि के लिए बकरा जुटाने की अनुमति नहीं देती। उन्होंने माधवदेव से यह भी कहा कि माधव के धर्मसंबंधी तर्कों के विश्वसनीय उत्तर के लिए उपयुक्त व्यक्ति नयी वैष्णव आस्था के प्रचारक शंकरदेव ही हो सकते हैं। माधवदेव ने धार्मिक आस्थाओं की सापेक्षिक श्रेष्ठता से संबंधित मसले को शंकरदेव से शास्त्रार्थ में सुलझाने का फ़ैसला किया।

गयापाणि के साथ माधव शंकरदेव को मिलने गये और औपचारिक निवेदन के बाद दोनों अपनी-अपनी आस्थाओं की श्रेष्ठता का दावा करते हुए धार्मिक विवाद में लग गये। शंकरदेव ने अपने मत के समर्थन में विभिन्न वैष्णव ग्रंथों से उद्धरण दिये जबकि दूसरी ओर, माधवदेव ने शाक्त साहित्य के आधार पर

अपने तर्क जुटाये। एक लंबी प्रतिद्वन्द्विता के बाद माधवदेव ने शंकरदेव की श्रेयस्कर तर्कनाओं से आश्वस्त होते हुए उनके चरणों पर शीश नवाया और औपचारिक रूप से वैष्णव पंथ स्वीकार किया। माधव के धार्मिक जीवन का यह प्रस्थान बिंदु था। तभी से वे एक उत्कट वैष्णव, वैष्णव पंथ के विश्वस्त अनुगामी और सच्चे प्रचारक बन गये।

2

गुरु-दीक्षा

शंकरदेव से छाया की भाँति जुड़ गये थे माधवदेव। **भगवद्गीता** में ज्ञान-प्राप्ति के लिए विनय, सेवा और अनुसंधित्सा से (तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया) गुरु को संतुष्ट करने का निर्देश जिज्ञासुओं को दिया गया है। अपने आध्यात्मिक गुरु की सेवा करते हुए माधवदेव ने गीता के निर्देश का यत्नपूर्वक पालन किया। एक निःस्वार्थ निजी सेवक की तरह अपने गुरु का जहाँ कहीं वे गये, अनुसरण किया।

भक्ति आंदोलन में माधवदेव की भूमिका एवं उनके शाश्वत योगदान का निरूपण करने से पहले शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित तथा प्रचारित नव-वैष्णव मत की प्रकृति एवं विशिष्टताओं की संक्षिप्त रूपरेखा देना प्रासंगिक होगा। शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित नववैष्णव पंथ एकेश्वरवादी संप्रदाय है। जो सबसे प्रामाणिक धर्मग्रंथ माने जाने वाले **भागवत-पुराण** के आधार पर केवल विष्णु-कृष्ण की पूजा का निर्देश देता है। वैष्णव-समुदाय के सभी तबके **भगवद्गीता** की ओर समान श्रद्धा का भाव रखते हैं। देवकी के पुत्र कृष्ण को ईश्वर का पूर्ण अवतार अथवा अभिव्यक्ति माना जाता है और कृष्ण के अलावा अन्य किसी देवता का शृंगार अथवा आराधना न करने का नियम बनाया गया है क्योंकि अन्य देवता कृष्ण रूपी परमब्रह्म की ही संतानें हैं। उपासकों को स्वामी के चरणों में संपूर्ण समर्पण करना चाहिए, विष्णु अथवा कृष्ण के अलावा किसी अन्य देवता की उपासना निंद्य है। इसीलिए इसे **एकशरण धर्म** अथवा ईश्वर के प्रति परम आत्म-समर्पण का पक्षधर धर्म कहा जाता है। उपासकों की संगति में पूजाभाव के विकास के लिए शंकरदेव ने नवधा भक्ति प्रक्रियाओं में से श्रवण तथा कीर्तन (महाप्रभु की महिमा सुनने तथा उसका गान करने) की विशेष अनुशंसा की है। देव सेवा अथवा

पूजा एक आस्थावान व समर्पित सेवक की भावना से और किसी प्रतिफल की अपेक्षा के विना की जानी चाहिए। निःस्वार्थ भाव से की गई सेवा(निष्काम कर्म) ईश्वर तक पहुँचने की सर्वोत्तम विधि बताई जाती है। चार आधारभूत सिद्धांत जिनको शंकरदेव ने नव-वैष्णव मत का आधार बनाया, ये हैं : नाम, देव, गुरु और भक्त। महाप्रभु के नाम का उच्चारण करना उनके कर्मों व लीलाओं का वर्णन सुनना तथा गुरु के निर्देशों के अनुसार पवित्र पुरुषों की संगति में उनके सुंदर रूप का ध्यान करना शंकरदेव के पंथ के आधारभूत पक्ष हैं। वैदिक, तांत्रिक अथवा पौराणिक किसी भी प्रकार के कर्मकांड को तुच्छ ठहराया गया है। ईश्वर का वर्णन वैयक्तिक एवं निर्वैयक्तिक दोनों ही पहलुओं से किया गया है। परवर्ती रूप में वह ब्रह्मन् के नाम से तथा पहले रूप में नारायण विष्णु के नाम से जाना जाता है। वह सर्वव्यापक होते हुए भी समूची सृष्टि से परे है। अनुभव मूलक दृष्टिकोण से विश्व यथार्थ, किंतु परम दृष्टि से अयथार्थ अथवा भ्रांति मूलक है। सांत स्व अनंत स्वत्व (परमात्मन) से एकरूप होते हुए भी ईश्वर की लीलाशक्ति, मायाजनित अविद्या के कारण भिन्न प्रतीत होता है।

अपने लेखों, भाषणों, वार्ताओं और प्रवचनों के माध्यम से शंकरदेव ने जन-समुदाय के हृदय में उपरोक्त सिद्धांतों को सफलता से सँजो दिया, यद्यपि उनका विरोध भी कम नहीं हुआ। अपनी दीक्षा के उपरांत माधवदेव ने अपनी समूची शक्ति व विद्वत्ता नव-वैष्णव पंथ के प्रचार-प्रसार में लगा दी। अपने आदर्शों की पूर्ति में विवाह को बाधक मानते हुए माधवदेव ने विवाह न करने का संकल्प किया। अपनी पसंद की वाग्दत्ता से तय हो चुके विवाह संबंध को तोड़ दिया। समूचे समुदाय के आध्यात्मिक विकास के उद्देश्य से वे आजीवन ब्रह्मचारी बने रहे। वे अपने साले के साथ रह रहे थे। गुरु द्वारा चलाई जा रही दैनिक धर्म-चर्चाओं एवं प्रार्थना-सेवाओं में सम्मिलित होने के लिए सुबह ही निकल जाते थे और रात को घर लौटते थे। लगभग इसी समय, तत्कालीन अहोम नरेश ने पागल हाथियों को पकड़ने में राजसेना की सहायता के लिए शंकरदेव के परिजनों को नियुक्त किया। चूँकि शंकरदेव के परिजन, भूया, अहोम नरेश को संतुष्ट नहीं कर पाये, उनको गिरफ़्तार करके राजदरबार में लाने का आदेश जारी किया गया। इसके बाद अपने बीबी-बच्चों को छोड़कर भूया जंगलों में भाग गये। राजसेना ने माधवदेव तथा शंकरदेव के दामाद हरि भूया को पकड़ा और उसे मौत के घाट उतार दिया। माधवदेव छोड़ दिये गये क्योंकि ऐसा कोई संबंधी न था जो उनकी मृत्यु पर शोक मनाता। इस कठोर आघात के साथ-साथ कुछ अन्य अप्रिय घट-नाओं ने शंकरदेव तथा उनके सहकर्मियों को खिन्न कर दिया। वे अहोम राज्य से निकल जाने का मौका देखने लगे। यह मौक़ा उन्हें तब मिला जब 1545 में राजकुमार शुक्लध्वज के नेतृत्व में कोच सेना ने हमला किया। इसका उन्होंने तुरंत

लाभ उठाया। माधवदेव की अगुआई में शंकरदेव के समर्पित अनुगामी उनके परिजनों समेत पश्चिम असम चले आये और अंततः कामरूप ज़िले के उपक्षेत्रीय नगर बरपेटा के पास बस गये। अपने साले गयापाणि उर्फ रामदास के साथ महादेव पहले बारादी में बसे। लेकिन बाद में वे गणकुची नामक स्थान पर चले आये जो पातबाउसी से थोड़ी ही दूर था, जहाँ शंकरदेव ने अपना प्रतिष्ठान बनाया था। माधवदेव अपने गुरु की सेवा करने और उनका धार्मिक प्रवचन, जिसके बीच-बीच में सामूहिक प्रार्थनाएँ हुआ करती थीं, सुनने के लिए नियमित रूप से आया करते थे। अपने जीवन की इस अवधि में पवित्र कर्तव्यों की ओर सतत समर्पणभाव, सांगठनिक सामर्थ्य, तीव्रचातुरी एवं मेधा, आश्वासनकारी आकर्षण, अपनी धार्मिक आस्था के विस्तार के लिए अथक उत्साह का उन्होंने भरपूर प्रदर्शन किया। इस प्रकार वे शंकरदेव के समर्पित एवं प्रबुद्ध शिष्यों में सर्वप्रमुख बन गये।

माधवदेव तथा कुछ अन्य प्रमुख शिष्य पुरी, गया एवं उत्तर भारत के अन्य तीर्थों की दूसरी यात्रा में शंकरदेव के साथ गये।[2] वे बिहार में बलिया-के कबीर मठ भी गये जहाँ कबीर की पोती ने श्रद्धापूर्वक उनकी आव भगत की। फिर शंकरदेव ने वृंदावन जाने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन माधवदेव ने इसके विपरीत सलाह दी। संभावित कारण था: वृंदावन को एक 'आकाश कुसुम' ही रहने दिया जाय ताकि यथार्थ के कठोर संपर्क से कृष्ण की दिव्यलीलाओं से जुड़ा आकर्षण समाप्त न हो जाय। वस्तुतः यह शंकरदेव को उनकी वृंदावन की वांछित यात्रा से विरक्त करने की एक चाल थी। उनके गुरु की पत्नी आशंकित थीं कि वृंदावन की पवित्र भूमि पर पैर रखने के बाद उनके पति शायद वापस न आयें। तीर्थयात्रा पर निकलते समय माधवदेव ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि वे गोकुल तथा वृंदावन की यात्रा किये बिना ही उनके पति को सुरक्षित लौटा लायेंगे। इस लंबी, कठिन और अधिकांशतः पैदल यात्रा में अनेक रोचक और साथ ही भयावह घटनाएँ घटीं। अनेक अवसरों पर यात्री-दल के मुखिया माधवदेव ने अपनी चातुरी व प्रत्युत्पन्नमति से विकट अथवा अप्रिय स्थितियों को रोकने में सफलता पायी। इससे उनके गुरु तथा साथी उपासक आश्वस्त हुए। यहाँ एक घटना का वर्णन करना आवश्यक होगा।

---

[2] यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि अपनी बारह वर्ष लंबी पहली तीर्थयात्रा की अवधि में शंकरदेव ने कन्याकुमारी से हिमालय तथा द्वारका से पुरी तक लगभग समूचा भारत समेट लिया था। यह तीर्थयात्रा उन्होंने पंद्रहवीं सदी के अंतिम चतुर्थांश में बरदोवा से शुरू की थी। जब शंकरदेव ने इस प्रवास की अवधि में अपने जन्मस्थान से यात्रा की उस समय माधवदेव पैदा नहीं हुए थे।

पश्चिम कूच बिहार के एक दूरस्थ भाग से गुज़रते हुए तीर्थयात्री गाँव-वासियों से कोई भोजन-सामग्री पाने में असफल रहे। आस-पास कोई दुकान या बाजार भी नहीं था जहाँ से वे कुछ खरीदते। अगले दिन माधवदेव कुछ प्रमुख सहयात्रियों के साथ गाँव के सरपंच के घर गये। कूच राजा का प्रतिनिधि होने का ढोंग करते हुए उन्होंने अपने साथियों को सरपंच की गिरफ़्तारी का आदेश दिया। कारण यह बताया कि उसने 'राजा के ससुर' को आवश्यक सामग्री नहीं पहुँचाई थी। छूटने पर सरपंच ने तत्काल चावल, नमक, तेल, सब्ज़ी इत्यादि जुटाकर माधवदेव को भेंट किया। इस घटना की जानकारी मिलने पर शंकरदेव ठठाकर हँस पड़े।[3]

अपने लंबे और घटनापूर्ण जीवन के अंतिम काल में जब शंकरदेव कूच बिहार नरेश नरनारायण के निमंत्रण पर उनके दरबार में गये, तब उन्होंने पातबाउसी (बरपेता) का मठ माधवदेव की देखरेख में डाल दिया था। माधवदेव को अपना उत्तराधिकारी चुनने के बाद शंकरदेव ने 1568 में यह नश्वर शरीर छोड़ दिया। माधवदेव अपने गुरु के बाद अट्ठाइस साल जिंदा रहे। अपने धर्माध्यक्षता-काल में उन्होंने न केवल पंथ को और पुष्ट किया बल्कि उसके सांगठानिक एवं व्यावहारिक पहलुओं को सुव्यवस्थित किया। गुरु के देहावसान के बाद उन्होंने एकाधिक साल तक उनके परिवार की देखरेख की और फिर आज के बरपेता कस्बे के समीप सुंदरिदिया चले आये। यहीं से उन्होंने नये पंथ के मामलों का संचालन किया। धर्म प्रवर्तन, प्रवचन, सामूहिक प्रार्थना-सेवा, नाट्य-प्रस्तुति एवं अन्य संचार-साधनों से देश के विभिन्न भागों में प्रचार-कार्य चलाने के लिए उन्होंने कुछ प्रमुख शिष्यों का चयन किया। सामान्यत: गोपाल आता के नाम से परिचित गोपालदेव, बुद्ध आता के नाम से जाने जाने वाले मथुरादास, विष्णु आता[4], पद्म आता, केशवचरण आता, रामचरण, श्रीहरि-गोविंद आता, लक्ष्मीकांत आता, पढिया माधव, वंशीगोपालदेव, तथा अध्यलिया यदुमणि इस अभियान पर भेजे गये बारह प्रमुख दूत थे। माधवदेव द्वारा नियुक्त इन बारह दूतों ने वैष्णव आस्था व अभियान की ज्योति असम के विभिन्न भागों में पहुँचाई। उन्होंने वैष्णव मठों तथा मठों से मिलते-जुलते प्रतिष्ठानों, सत्रों, की नींव डाली और जातिगत व सामाजिक विभेद किये बिना जनसमुदाय के सभी तबकों में अपने पंथ की शिक्षाओं-आदर्शों का प्रचार किया। माधवदेव

---

[3] दरअसल, यात्री-दल के साथ चलनेवाले, शंकरदेव के संगोत्र, रामराय राजकुमार शुक्लध्वज के ससुर थे।

[4] आता (संस्कृत आत्मन) पद का प्रयोग सामान्यतया उन वैष्णव भक्तों के लिए किया जाता है, जिनको शिष्यों को दीक्षित करने का विशेष अधिकार प्राप्त था।

अपने शिष्यों के निमंत्रण पर आसपास के इलाकों में जाकर वैष्णवपंथ की प्रगति अपनी आँखों से देखते थे। इसके अलावा वे हाजो स्थित पवित्र स्थल हयग्रीव-माधव तथा नीलाचल पहाड़ियों पर स्थित कामाख्या भी गये। लेकिन कामाख्या में उन्होंने अंत:कक्ष में जाकर 'मां भगवती की योनि का दर्शन' करने से इनकार कर दिया।[5]

गुरु के देहावसान के तुरंत बाद माधवदेव को नव-वैष्णव संप्रदाय के एक प्रभावशाली ब्राह्मण सदस्य द्वारा संप्रदाय में फूट डालने के प्रयास का सामना करना पड़ा। इस विवाद का कारण स्पष्ट निर्धारित नहीं किया जा सकता। दामोदरदेव की जीवनियों में इस विवाद के बारे में एक जैसी चुप्पी है। शंकरदेव तथा माधवदेव की जीवनियों में यह अविश्वसनीय वक्तव्य मिलता है कि शंकरदेव के श्राद्ध पर माधवदेव के निमंत्रण को दामोदरदेव ने ठुकरा दिया था। अंतत: जब उन्हें आने के लिए राजी किया जा सका, तब उन्होंने शंकरदेव के प्रति कोई जुड़ाव अथवा कृतज्ञता-भाव नहीं दिखाया। उन्होंने उन अपासकों को ठुकराने से भी इनकार कर दिया जिनको किन्हीं धार्मिक उपचारों के लिए माधवदेव ने संप्रदाय से अलग कर दिया था। इस प्रकार विभाजन की प्रक्रिया पूरी हुई और अब दामोदरदेव ने महापुरुषीय संप्रदाय से कोई संबंध स्वीकार किये बिना अपने पंथ का प्रचार शुरू किया। शंकरदेव के जीवनकाल में किसी विरोध या विखंडन का साक्ष्य हमें नहीं मिलता। लेकिन उनके अवसान के बाद दामोदर के नेतृत्व में ब्राह्मण गुट ने माधवदेव के कर्मकांड-विरोधी व्यवहार को शायद पसंद नहीं किया। इसीलिए उन्होंने किसी सुगम बहाने से संबंध-विच्छेद कर लेने के पहले ही अवसर का लाभ उठाया। दामोदरदेव के जीवनी लेखक शंकरदेव के प्रति दामोदर को ऋणी स्वीकार करते हुए भी उनके बीच गुरु-शिष्य संबंध को मान्यता नहीं देते। गुरु होने, न होने के विवादास्पद सवाल में न जाते हुए यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि दामोदर को प्रारंभिक चरण में भक्ति का मार्ग शंकरदेव ने ही दिखाया था।

एक अप्रिय घटना के कारण माधवदेव अपना आवास सुंदरिदिया से बरपेटा ले आये। उन्होंने एक सुंदर पीठ बनवा कर सत्र का पुनर्निर्माण करवाया और वृंदावन की गोपियों के रूप में सज्जित किशोरों की एक नाट्य-प्रस्तुति के साथ उसका औपचारिक उद्घाटन किया। इससे नये पंथ के विरोधियों को माधवदेव की छवि धूमिल करने के लिए सुगम साधन मिल गया। कामरूप के कोच राजा रघु-नारायण से उन्होंने शिकायत की कि यह वैष्णव संत आसपास की बस्तियों की

---

[5] कामाख्या के मुख्य मंदिर में भगवती की कोई प्रतिमा नहीं है। यहाँ देवी की योनि के एक शिला-प्रतीक की ही पूजा की जाती है।

युवतियों को खुले मंच पर नाचते दिखाकर भ्रष्ट बना रहा था। राजा ने जाँच का आदेश दिया और आरोप को आधारहीन पाया। कुछ समय बाद विरोधियों ने फिर से माधवदेव की शिकायत की। आरोप इस बार यह था कि वे युगों पुराने वैदिक रीति-रिवाजों का परित्याग करके धर्म-विरुद्ध सिद्धांतों की शिक्षा दे रहे थे। राजा ने सिपाहियों की एक टोली भेजी जिसने मठ को ध्वस्त कर दिया, अनेक वैष्णव उपासकों को गिरफ़्तार कर लिया और अंततः माधवदेव से हर्जाने के रूप में एक हज़ार रुपयों की माँग की। माधव ने इस भुगतान में असमर्थता व्यक्त की, जिस पर उन्हें कुछ अनुयायियों के साथ राजा द्वारा पूछताछ के लिए राजधानी विजयनगर ले जाया गया। अंतिम क्षण में दरबारी पंडित सिद्धांत-वागीश के हस्तक्षेप से माधवदेव अपने अनुगामियों समेत ससम्मान छोड़ दिये गये।

माधवदेव को अब राजदंड की निरंतर आतंक-छाया में जीना पड़ रहा था। कुछ महीनों बाद राजा ने उन्हें बपरेटा से निकाल दिया और हयग्रीव-माधव की पीठ हाजो चले जाने का आदेश किया। यहाँ माधवदेव को प्रतिदिन मिलने वाले श्रोताओं की संख्या मंदिर के उपासकों से अधिक ही होती थी। इससे वे कुछ लोग स्वभावतः कुपित हुए जो पहले ही पूर्वग्रह से भरे हुए राजा से उनकी शिकायत का मौक़ा खोज रहे थे। इसलिए अपने शुभचिन्तकों की सलाह पर माधवदेव ने राजा लक्ष्मीनारायण शासित पश्चिमी कोच राज्य में अनुकूल वातावरण की खोज में पूर्वी कोच राज्य की सीमा पार करने का फैसला किया। इस राजा और उसके परिवार ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया और राजधानी से थोड़ी दूर एक जगह भेलाडुआर में बसने में उनकी सहायता की। माधवदेव की आस्था की प्रामाणिकता से आश्वस्त राजा ने अपने राज्य में इसके प्रचार की पूरी स्वतंत्रता उन्हें दी। राजपरिवार के कुछ सदस्यों ने भी वैष्णव मत का वरण किया। राजपरिवार से प्राप्त संरक्षण एवं समर्थन के बावजूद माधवदेव के मत का विरोध बिलकुल बंद नहीं हुआ। राजदरबार का एक उच्च सदस्य विरोचन काजी आरंभ में संत का प्रशंसक था। माधव के अनुगामी अपने दो रिश्तेदारों द्वारा उसके घर में पका भोजन लेने से इनकार करने के कारण उसने माधव की ओर विरोधी रुख अपना लिया। अत्यंत क्षुब्ध विरोचन कुछ स्थानीय विद्वानों की सहायता से माधव को धार्मिक विवाद में घसीटने में सफल हुआ और अंततः शास्त्रीय विवाद सुलझाने के लिए उसने राजदरबार में माधव की पेशी करवाई। बहरहाल, माधवदेव ने अपनी आस्था और पंथ के पक्ष में विश्वसनीय तर्क जुटाते हुए विवाद में गौरवपूर्ण ढंग से अपना बचाव किया। राजा ने न केवल उनको योग्य सम्मान का भागी बनाया बल्कि वैष्णव मत को राजकीय धर्म घोषित करके उनके धार्मिक क्रिया कलाप का पथ सुगम कर

दिया । माधव के जीवन के शेष दो या तीन साल साहित्यिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों में शांतिपूर्वक बीते । फिर भी, नये पंथ के प्रचार का दायित्व उठाने वाले प्रमुख अनुगामियों के क्रिया-कलापों से निकट संपर्क उन्होंने बनाये रखा । शक संवत् 1518 के भाद्रपद (भादों) मास में होठों से पवित्र हरि-नाम का उच्चार करते हुए उन्होंने अंतिम साँस ली ।

3

धार्मिक संगठनकर्ता

आरंभिक सत्रहवीं सदी के सबसे विश्वसनीय जीवनी-लेखक दैत्यारि ठाकुर के अनुसार यह माधवदेव ही थे जिसने अपने गुरु शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित भक्ति-धर्म के क्षितिज का विस्तार किया। वे लिखते हैं: 'शंकर ने उपासना का धर्म उजागर किया, माधव ने इसका मर्म सबको बताया'।

लगभग चालीस साल तक शंकरदेव के परम विश्वस्त अनुयायी के रूप में सक्रिय रहने के अलावा माधवदेव ने अपनी संगठन-क्षमता, साहित्यिक व सांगीतिक प्रतिभा एवं सर्वोपरि अपने असीम उत्साह से इस नये धार्मिक निकाय को लोकप्रियता तथा स्थायित्व देने में केंद्रीय भूमिका निभाई। यद्यपि आध्यात्मिक रूप से कमज़ोर लोगों के प्रति वे अत्यंत सहानुभूतिपूर्ण रुख रखते थे, फिर भी अपने मत के धार्मिक एवं आचारगत सिद्धांतों के अनुपालन एवं अनुरक्षण में वे कठोर अनुशासन-प्रेमी थे। उन अनुयायियों के निष्कासन से वे हिचकते नहीं थे जो उनके निकाय के धार्मिक एवं संस्थागत अनुशासन का स्पष्ट उल्लंघन करते थे। शंकरदेव की पत्नी के साथ भी उन्होंने रियायत नहीं की और उसे विष्णु से भिन्न किसी देवता की प्रतिमा से वंचित कर दिया, जिसकी पूजा वह अपने रसोईघर के एकांत में करती थी।

वैष्णव शिक्षाओं, आदर्शों व आचारों के प्रकाश पुंज की भाँति सक्रिय सत्र संस्थान अपने विकास के लिए माधव की संगठन-क्षमता का ऋणी था। यद्यपि संस्थान की आधारशिला शंकरदेव ने ही रखी थी, उनके जीवनकाल में यह पूर्ण सत्र संस्थान का स्तर नहीं पा सका। सत्र संस्थान के स्वरूप को उसके संरचनात्मक एवं संस्थागत पहलुओं में पूरा करने का दायित्व माधवदेव के ज़िम्मे आया। उनके प्रेरणापूर्ण निर्देश एवं देखरेख में बरपेता में एक नये सत्र का प्रायोजन तथा

निर्माण पूरा हुआ। प्रार्थना भवन (नामघर) और फाटक (करापाट-कपाट) का अभिकल्प और सज्जा फूलदार आकृतियों तथा सजावटी वस्तुओं से की गयी थी। स्तंभ और दीवारों का बाहरी तल माइकाटिन-चद्दरों (बालिचंदा) से से बना था। केंद्रीय प्रार्थना भवन के चारों ओर विवाहित एवं ब्रह्मचारी उपासकों के लिए अलग-अलग कुटीर बनवाने की भी व्यवस्था उन्होंने की थी। बरपेटा झील पर परिवारवालों तथा ब्रह्मचारियों के लिए अलग-अलग स्नान-घाटों का भी निर्माण किया गया था। सत्र के सुगम संचालन के लिए संस्थान की दैनंदिन आवश्यकता की पूर्ति हेतु एक सामान्य उपभोक्ता भंडार भी शुरू किया गया जिसमें सभी भक्त निर्धारित योगदान करते थे। जो नक़द या अन्य प्रकार से योगदान नहीं कर सकते थे, वे श्रमदान करते थे। सत्र की विभिन्न ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के लिए अलग-अलग कार्यकर्त्ता नियुक्त किये गये थे।

गुरु आसन की पूजा, अर्थात् किसी आराध्य देव की प्रतिमा के स्थान पर शंकरदेव अथवा माधवदेव की किसी महत्त्वपूर्ण भक्ति-रचना की पूजा, की प्रथा शुरू करने का श्रेय माधवदेव को जाता है। यद्यपि शंकरदेव ने मूर्ति-पूजा का बिलकुल ही तिरस्कार नहीं किया, उन्होंने इसे प्रोत्साहन भी नहीं दिया। मूर्ति-पूजा की प्रथा पर पूर्ण विराम लगाने के विचार से माधवदेव ने **गुरु आसन** को श्रद्धांजलि समर्पित करने की रीति आरंभ की। **गुरु आसन** के अंतर्गत सामान्यतः शंकरदेव द्वारा किये गये **भागवत पुराण** के असमिया रूपांतर अथवा माधवदेव का **नामघोष** या **भक्ति-रत्नावली** रचना आती है। यह एक ओर तो एक साथ दो गुरुओं का और दूसरी ओर एक आराध्य का प्रतिनिधित्व करती है। माधवदेव वैष्णव समुदाय के आध्यात्मिक गुरु के रूप में शंकर के उत्तराधिकारी बने किंतु इस विश्व से अपने प्रस्थान के समय उन्होंने किसी को अपना उत्तराधिकारी चुनने की अपेक्षा **नामघोष** में उन्हें ही देखने का निर्देश दिया। उन्होंने कहा :

> "मैं तीन दिनों तक इस मामले पर सोचता रहा हूँ किंतु किसी को धार्मिक नेतृत्व का बोझ उठाने योग्य नहीं पाया। इसीलिए मैं अपने घोष (नामघोष) की अनुशंसा करूँगा जिसमें तुम्हारी आवश्यकता की सब चीज़ें बताई गई हैं। मेरी शक्ति और मेरी मेधा **घोष** में ही संचारित हो चुकी है। यदि खोज की विधि मालूम है तो उपासक मुझे वहीं पा जायेंगे।"[6]

कहा जाता है कि एक अन्य अवसर पर अपने शिष्यों को उन्होंने यह निर्देश दिया :

---

[6] दैत्यारि ठाकुर : शंकरदेव-माधवदेव-चरित्र, सं० आर. एम. नाथ, पृष्ठ 381-82

"दशम (भागवत का दशम स्कंध) तथा कीर्तन मेरे गुरु (शंकर) की छवियाँ हैं और घोष (नामघोष) तथा रत्नावली (भक्ति-रत्नावली) मेरा आवास।"[7]

इस प्रकार हम पाते हैं कि आराध्य की मूर्ति अथवा चित्र की तुलना में पवित्र ग्रंथों का स्तर उठाने के लिए मुख्य रूप से माधवदेव ही उत्तरदायी हैं। पवित्र धर्मग्रंथों की पूजा करने अथवा उनके प्रति श्रद्धाभाव दिखाने की प्रथा जैन, सिख और दादूपंथ समेत अनेक धार्मिक निकायों में प्रभुत्वशाली है।[8]

यद्यपि शंकरदेव ने आत्मनिषेध और ब्रह्मचर्य पर ज़ोर नहीं दिया, उनके कुछ शिष्यों ने निर्बाध धार्मिक जीवन बिताने के लिए ब्रह्मचर्य स्वीकार किया। आजन्म ब्रह्मचारी बने रहने वाले माधवदेव के धर्माध्यक्षता-काल में ब्रह्मचर्य के व्यवहार को परोक्ष प्रोत्साहन मिला। इस संबंध में ध्यान देने की बात है कि धार्मिक उद्देश्यों को सकल समर्पित तथा **केवलीय** नाम से सुपरिचित उपासकों की एक बड़ी संख्या सत्र-संस्थानों में ही भिक्षु-सा ब्रह्मचारी जीवन बिताती है। भिक्षु-सत्रों में सभी निवासी ब्रह्मचारी होते हैं। रात को वहाँ औरतों को रुकने की अनुमति नहीं होती। इस प्रकार असम वैष्णवपंथ के आत्मनिषेधी निकाय ने परोक्ष रूप से माधवदेव के ही जीवन से प्रेरणा ली थी।

असम वैष्णवपंथ में दैनिक धर्मचर्या को प्रसंग अथवा अधिक सही रूप में **नाम प्रसंग** कहा जाता है। शंकरदेव के समय में प्रसंग तो होते थे, लेकिन विभिन्न इकाइयों में उनकी व्यवस्था या स्पष्ट विभाजन नहीं किया गया था। **कथा गुरु चरित** के अनुसार गुरु के अवसान के बाद सुंदरिदिया में रहते हुए माधवदेव ने दैनिक धर्मचर्या को सुबह, दोपहर, शाम की चौदह इकाइयों में व्यवस्थित एवं विभाजित किया। **ब्रह्म संहति** समूह से जुड़े सत्रों के अलावा, असम वैष्णवपंथ की तीन अन्य **संहतियों** के सदस्य माधवदेव द्वारा निश्चित चौदह इकाइयों वाली दैनिक धर्मचर्या आज भी पूरा करते हैं। माधवदेव के देहावसान के बाद असम वैष्णवपंथ चार समूहों (संहतियों) में विभाजित हो गया। प्रत्येक संहति इस मत की चार आधारभूत अवधारणाओं में से किसी एक पर विशेष ज़ोर देती है। ब्रह्म-संहति **देव** पर, काल-संहति **गुरु** पर, पुरुष-संहति **नाम** पर, और निका-संहति **भक्त** अथवा उपासकों के सत्संग पर बल देती है।

यह ऊपर बताया जा चुका है कि किसी देव प्रतिमा की तुलना में महाप्रभु के पवित्र नाम को साक्षात् करनेवाली पवित्र पुस्तक का स्तर उठाने के लिए ज़िम्मेदार माधवदेव ही हैं। लेकिन सिखों के **ग्रंथ-साहब** की भाँति यहाँ आसन

---

[7] यू. सी. लेखारू (सं०) कथागुरुचरित, पृष्ठ 502

[8] कालिका-पुराण, 58/31, यागिनी-तंत्र, 6/142-143

पर रखे पवित्र ग्रंथ की औपचारिक रूप से पूजा नहीं की जाती। पवित्र पंथ के प्रति श्रद्धाभाव में अंतर्निहित सिद्धांत का बोध सुगम है। वैष्णवजन नाम तथा नामी को समरूप मानते हैं। यों भी नाम ध्वनि-समूह मात्र नहीं बल्कि एक जीवंत सत्ता है।[9] इसीलिए महाप्रभु के नाम को साक्षात द्योतित करनेवाली पवित्र पुस्तक आराध्यदेवता के साथ-साथ उस गुरु का भी प्रतीक बनती है जिसने पवित्र नामों का रहस्य एवं माहात्म्य उद्घाटित किया। यद्यपि माधवदेव ने इस धार्मिक समुदाय के नेतृत्व के लिए कोई उत्तराधिकारी नहीं चुना फिर भी, उनके बाद गुरु-परंपरा समाप्त नहीं हुई। बल्कि उनके द्वारा उत्तराधिकारी चुनने से इनकार किये जाने के कारण उनके बाद चार **संहतियों** (उप-संप्रदायों या समूहों) का उदय हुआ। इन शाखाओं के प्रवर्तक, जो माधवदेव के प्रमुख शिष्यों में से थे, अपने-अपने उप-संप्रदाय के मुखिया बने। लेकिन यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि असम के सभी वैष्णवजनों द्वारा स्वीकृत तथा मान्यताप्राप्त दो गुरुओं की परंपरा बारंबार शंकर और माधव का ही उल्लेख करती है, किसी अन्य का नहीं।

---

[9] जेई नाम सेइ हरि जाना निष्ठा करि;
कृष्ण नाम चैतन्य स्वरूप। (**नामघोष**).

4

साहित्य-सृजन

अनेक मध्यकालीन संत और धार्मिक नेता सुयोग्य संगीतकार, काव्यरचनाकार और लेखक थे। कबीर, मीराबाई, तुकाराम, नामदेव, आलवार और अन्य अनेक अपने सुमधुर गीतों और दिव्य संगीत के आह्लादकारी आनंद से भारी जन-समूह जुटाते थे। शंकरदेव तथा माधवदेव दोनों ही महान संगीतज्ञ थे। मध्यकालीन जीवनियों में यह उल्लेख मिलता है कि अपनी प्रथम नाट्य-प्रस्तुति चिह्लयात्रा के समय शंकरदेव ने मेघमंडल राग में एक गीत गाया, जिससे तत्काल वर्षा शुरू हो गई। यह अतिरंजना भी हो सकती है, लेकिन इससे शास्त्रीय संगीत में शंकरदेव की प्रवीणता की पुष्टि तो होती ही है। उन्होंने विभिन्न रागों के अनुरूप अनेकानेक भक्ति-गीतों की रचना की थी। माधवदेव भी एक दक्ष संगीतकार थे। अपने आध्यात्मिक गुरु के पदचिह्नों पर चलते हुए उन्होंने भी, परंपरा के अनुसार, एक सौ इक्यानवे भक्ति गीतों की रचना की जिनमें से एक सौ पचास तो अब भी वैष्णव मंडलियों में प्रचलित और प्रशंसित हैं। पारंपरिक रूप से **बडगीत** के नाम से सुपरिचित ये भक्ति-गीत विभिन्न शास्त्रीय रागों के अनुरूप रचे गये हैं। अपनी सांगीतक उपलब्धियों के कारण किन्हीं मध्यकालीन जीवन-कथाओं में माधवदेव का बखान किसी गंधर्व के अवतार रूप में भी किया गया है। भक्ति गीतों के रचयिता के रूप में माधवदेव का नाम इतना प्रसिद्ध और लोकप्रिय हो गया था कि परवर्ती अनेक अज्ञात कवियों ने अपनी रचनाओं को लोकप्रियता देने के लिए माधवदेव का नाम उनसे जोड़ दिया था।

रंगमंच और नाटक में भी माधवदेव गहरी रुचि रखते थे। कहा जाता है कि उन्होंने छः भक्तिनाटकों की रचना की और कुछेक प्रस्तुतियों का निर्देशन उन्होंने स्वयं किया। **कथागुरुचरित** में उल्लेख मिलता है कि अपने शिष्यों के

अनुरोध पर माधवदेव ने अपने दो नाटकों, **गोवर्धन-यात्रा** और **राम-यात्रा** की प्रस्तुतियों का निर्देशन किया। एक अन्य अवसर पर अपने प्रमुख शिष्य वरविष्णु आता के अनुरोध पर उन्होंने **नृसिंह-यात्रा** नाटक का मंचन किया, जिसमें वे नृसिंह की भूमिका में आये। प्रस्तुति इतनी सफल और रोचक थी कि हिरण्यकशिपु का वक्ष चीरते नृसिंह को देखकर संभ्रमित दर्शक उसे वास्तविक मानते हुए भाग निकले।[10] असम में भक्ति-धारा के प्रसार में प्रभावशाली तत्त्व बननेवाली वैष्णव नाट्य-प्रस्तुतियाँ अपने उद्भव तथा विकास के लिए एक बड़ी सीमा तक शंकरदेव की प्रतिभा की ऋणी हैं। शंकरदेव की नाट्य-परंपरा को माधव ने इस समर्थ रूप में आगे बढ़ाया कि वह आज भी जीवंत बनी हुई है।

एक कलाकार के रूप में माधवदेव ने असम के साहित्य पर अपने सृजन सामर्थ्य का अमिट एवं चिरप्रकाशमान प्रभाव छोड़ा है। उनकी साहित्यिक कृतियों को 1. काव्य, 2. भक्ति संकलन तथा अनुवाद, 3. नाटक तथा 4. उपासना—गीत की चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। **आदिकांड (रामायण)** तथा **राजसूय काव्य** पहली श्रेणी में आते हैं, जबकि **भक्ति-रत्नावली, नाममालिका, नामघोष** तथा **जन्म-रहस्य** को दूसरी श्रेणी में रखा जा सकता है।

यद्यपि माधव का नाम नौ के आसपास नाटकों के साथ जोड़ा जाता है, उन सबको उनकी ही रचना नहीं माना जाता। वैष्णव परंपरा उनको छः नाटकों का श्रेय देती है, उन नाटकों का नामोल्लेख न करते हुए। जीवनी लेखक पाँच नाटकों के बारे में एकमत होते हैं किंतु अन्य चार नाटकों के बारे में मतभेद बने रहते हैं। उनको केवल छः नाटकों का लेखक बतानेवाली परंपरा भी असंदिग्ध नहीं है। यदि हम उन दो विलुप्त नाटकों को भी ध्यान में रखें, दैत्यारि के अनुसार जिनका लेखन एवं मंचन माधव ने किया था, तो नाटकों की कुल संख्या ग्यारह हो जाती है। इसलिए माधवदेव के सचमुच छठे नाटक का निर्णय बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि इस परंपरा की प्रामाणिकता ही संदिग्ध है। नौ नाटकों के नाम प्रकार हैं : (1) अर्जुन-भंजन (2) चोर धरा (3) पिंपरा-गुछुवा (4) भूमि-लेटोवा (5) भोजन-विहार (6) ब्रह्मा-मोहन (7) भूषण-हरण (8) कटोरा-खेला और (9) रास-झुमुरा। पहले पाँच तो विवाद से परे हैं और बाक़ी चार पर विवाद है। **रामयात्रा** और **गोवर्धन-यात्रा** विलुप्त अथवा अब तक अप्राप्य हैं।

यद्यपि परंपरावादी वैष्णव तथा समीक्षक अंतिम नाटक अर्थात **रास-झुमुरा** को माधवदेव की रचना नहीं मानते, अट्ठारहवीं सदी में लिखे **कथा-गुरुचरित** तथा सत्रहवीं सदी के दैत्यारि ठाकुर रचित **गुरुचरित** में उन्हें वैष्णव संत (माधव)

---

[10] कथा-गुरुचरित, पृष्ठ 247, 409

की वास्तविक रचना घोषित किया गया है। उपरोक्त चार नाटकों के पक्ष में प्रस्तुत तर्कनाओं को निरस्त करने के लिए निम्न मुख्य कारण हैं :

1. वास्तव में माधव के नाटकों से भिन्न इन नाटकों में आराध्यदेव की महिमा में सामान्य स्तुति पद (नांदी श्लोक) तथा भक्ति-पद (**भटिमा**) नहीं मिलते।
2. कथानक को जोड़नेवाले विविध सूत्रों का काम करनेवाले अंतर्वर्ती संस्कृत श्लोक जो शंकरदेव के नाटकों तथा वास्तव में माधव के नाटकों में मिलते हैं, इन नाटकों में अनुपस्थित हैं।
3. उपरोक्त नाटकों में से अंतिम तीन में निरूपित राधा-कृष्ण संबंध असम वैष्णव पंथ की आधारभूत विशेषताओं से संगति में नहीं है, जिनमें आराध्य एवं उपासक के बीच **दास्य** तथा **वात्सल्य** भावों की ही प्रधानता मिलती है।
4. इन नाटकों की भाषा-शैली निर्विवाद रूप से माधव के नाटकों की तुलना में निम्न स्तर की है।

माधव को छ: नाटकों का लेखक बताने वाली परंपरा को स्वीकृति देना कठिन है। कुछ जीवनियों के अनुसार **रामयात्रा** तथा **गोवर्धन यात्रा** को स्वयं उन्होंने रचा और अपने निर्देशन में मंचित किया था। इनको शामिल कर लेने पर नाटकों की संख्या बढ़ जाती है। दरअसल, बारह (छ: शंकरदेव रचित और छ: माधवदेव रचित) नाटकों का परंपरा को बेहिचक स्वीकार नहीं किया जा सकता। माधव का नाम छ: नाटकों से जोड़ने के तथ्य की एक संतोषजनक व्याख्या यह हो सकती है। यद्यपि उनके नाटकों की ठीक-ठीक संख्या का निश्चित निर्धारण संभव नहीं है, परवर्ती वैष्णव उपासकों ने असम के बारह भूया परिवारों, **भागवतपुराण** के बारह सर्गों, विष्णु के बारह उपासकों और माधवदेव, पुरुषोत्तम ठाकुर व चतुर्भुज ठाकुर प्रत्येक द्वारा मनोनीत बारह दूतों के सादृश्य के आधार पर असम में वैष्णवपंथ के प्रचार के लिए बारह नाटकों का मिथक रच दिया। परंपरा में बारह नाटकों का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं मिलता। जबकि शंकरदेव के छः नाटक ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं, माधवदेव के नाटक समस्या खड़ी करते हैं क्योंकि कुछ क्षेपक रचनाएँ उनके नाम से आती हैं। इस प्रकार नाटकों की निश्चित संख्या शोधकर्मियों के लिए गूढ़ मुद्दा बनी हुई है। निर्विवाद नाटकों की संख्या इसीलिए पाँच रखी गई है और अन्य चार की वास्तविकता पर प्रश्नचिह्न लगाया गया है। लेकिन एक सूक्ष्म परीक्षण के बाद सामान्य स्तुति-पद से रहित होने पर भी, **ब्रह्मा-मोहन** वास्तव में माधवदेव की ही रचना प्रतीत होता है।

माधवदेव की रचनाओं का कालक्रम निश्चित करना बहुत कठिन है।

वैष्णव संतों व प्रचारकों की किन्हीं मध्यकालीन जीवनियों में उनकी कृतियों के यत्र-तत्र उल्लेख से इस कालक्रम के निर्धारण के लिए स्पष्ट साक्ष्य अथवा संकेत नहीं मिलते। बहरहाल, **बड़गीत** नाम से सुपरिचित उनके भक्ति-गीतों को उनकी प्रारंभिक रचनाएं माना जा सकता है। यद्यपि उनकी अन्य कृतियों का कालक्रम निश्चित करना कठिन है, यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि **आदि-कांड** और **जन्म-रहस्य** प्रारंभिक कृतियाँ हैं। वैष्णव संतों की मध्यकालीन जीवनियों से मिलनेवाले साक्ष्य से पता चलता है कि माधवदेव ने कम-से-कम एक नाटक (**अर्जुन-भंजन**) शंकरदेव के जीवन काल में ही अर्थात् 1568 ईस्वी के पहले रचा था। **कथा गुरुचरित** में वर्णन मिलता है कि **अर्जुन-भंजन** की प्रस्तुति में स्वयं शंकर नंद की भूमिका में आये थे। **नाम-मालिका** का अनुवाद लक्ष्मीनारायण के एक मंत्री विरूपाक्ष काजी के आग्रह पर किया गया था, जब कोच राजा संत (माधव) कूच बिहार में रहने को बाध्य हुए थे। चूँकि लक्ष्मीनारायण 1584 में सिंहासनारूढ़ हुए थे, इस कृति की रचना उस वर्ष के बाद ही की गयी होगी। माधवदेव ने अपनी अंतिम, महत्त्वपूर्ण कृति **नामघोष** को परिष्कृत रूप अपने जीवन के अंतिम कालखंड में दिया। इस रचना के कुछ पद निश्चय ही पहले लिखे गये थे, लेकिन समूची रचना को अंतिम रूप सोलहवीं सदी के अंतिम दशक में दिया गया था।

उपरोक्त वास्तविक कृतियों के अलावा, परवर्ती लेखकों की कुछ अन्य संदिग्ध रचनाओं को भी माधवदेव के नाम से जोड़ा जाता है। इन रचनाओं की भाषा, शैली तथा अंतर्वस्तु उनकी अवास्तविकता को स्पष्ट उजागर करती हैं। **देहविचार-गीता** नाम से ख्यात गुह्य तथा तांत्रिक अर्थवत्ता वाले अनेक गीतों में माधव की **भणिता** को भी क्षेपक रूप में सम्मिलित कर दिया गया है।

5

पद्य-रचना

आदिकांड रामायण का अनुवाद माधवदेव की आरंभिक कृतियों में से एक है। इसकी रचना शंकरदेव के पातबाउसी प्रवास के समय हुई थी। इस रचना का संभाव्य काल सोलहवीं सदी के छठें दशक में रखा जा सकता है। वैष्णव संतों के जीवन-वृत्तों से भरी, अट्ठारहवीं सदी की एक वृहत् गद्य-रचना **कथा-गुरुचरित** में कहा गया है कि शंकरदेव के एक साहित्यिक अग्रज माधव कंदली ने स्वप्न में दर्शन दिया। उन्होंने अपनी **रामायण** को, जिसकी पहली और अंतिम पोथियाँ खो अथवा नष्ट हो गयी थीं, संकलित तथा सुरक्षित करने का उनसे अनुरोध किया। आख्यान के अनुसार, शंकरदेव ने माधव कंदली की **रामायण** के पुनस्संयोजन का दायित्व उठाया और खोयी हुई अंतिम पोथी की रचना तो स्वयं की, लेकिन पहली पोथी का काम माधवदेव से संपन्न करवाया। यह आख्यान शायद बाद में माधव कंदली की अधूरी अथवा चिंदी-चिंदी रचना को पूरा करने में दोनों वैष्णव संतों की भूमिका को उचित ठहराने के लिए गढ़ा गया था। इस प्रकार, माधव कंदली की **रामायण** के वर्तमान स्वरूप में आगे-पीछे माधवदेव आदिकांड और शकरदेव के उत्तरकांड जुड़े हैं। माधवदेव ने अपना काम बड़ी दक्षता से किया। **आदिकांड** के सभी सर्गों का अनुवाद करने की अपेक्षा उन्होंने केवल उन अंशों को चुना जो राम के जीवन एवं चरित्र से संबंध रखते हैं। शेष सर्गों में से कुछ तो बिलकुल निकाल दिये गये हैं और कुछ को यों ही निपटा दिया गया है। सगर, मांधातृ, भगीरथ, दिलीप और राम के अन्य पूर्वजों से संबंधित कथाओं की संक्षिप्त रूपरेखा मिलती है किंतु वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के बीच संघर्ष एवं त्रिशंकु, अंबरीष, शुन:शेफ इत्यादि से संबंधित कांड बिलकुल छोड़ दिये गये हैं क्योंकि वे रामकथा से बाहर की चीज़ें हैं। दूसरी ओर, कवि ने राम

के जन्म, वशिष्ठ के साथ सिद्धाश्रम की ओर उनके प्रयाण तथा सीता से विवाह की कथा का वाग्वैदग्ध्यपूर्ण एवं विशद वर्णन मिलता है। बहरहाल, इसमें सम्मिलित कतिपय कांडों के सूक्ष्म परीक्षण की आवश्यकता है क्योंकि वे उन स्रोतों के बारे में सवाल खड़े करते हैं जिनसे माधवदेव ने असमिया रूपांतरण किया था। इंद्र द्वारा अहिल्या के शीलभंग, गौतम के शाप तथा राम के चरण-स्पर्श से अहिल्या-उद्धार की कथा वाल्मीकि के बालकांड का अंश नहीं है। यह रहस्य बना हुआ है कि तोड़मरोड़ के बावजूद यह कांड माधवदेव के अनुवाद में स्थान कैसे पा गया। इसमें इंद्र को देवी दुर्गा की पूजा करके गौतम के शाप से मुक्त होते दिखाया गया है। बालकांड में शामिल मूल घटना रूप में दुर्गा की ऐसी पूजा से इंद्र की पापमुक्ति की चर्चा नहीं है। वाल्मीकीय कथारूप के अनुसार अहिल्या के साथ व्यभिचार करने के कारण गौतम के शाप से इंद्र नपुंसक और अंडकोषहीन हो जाते हैं। अहिल्या भी अदृष्ट बनी रहने तथा निर्जन आश्रमों में वायुसेवन से ही जीती रहने को अभिशप्त हुई। रामायण के परवर्ती संस्करणों के वर्णनों के विपरीत, उसे शिलाखंड का रूप नहीं दिया गया था। परवर्ती रामायणों तथा पुराणों में यह भी उल्लेख है कि इंद्र को न केवल अंडकोष से वंचित कर दिया गया था, बल्कि उन्हें अपने शरीर पर एक हज़ार योनियाँ धारण करने की यातना-अवमानना सहन करने का भी शाप मिला था। देवताओं के हस्तक्षेप और अपने गुरु बृहस्पति की कृपा से इंद्र ने अपना पौरुष पुनः प्राप्त किया और योनि चिह्न आँखों में बदल गये। इस प्रकार वे **सहस्रचक्षु** बन गये। माधव की रचना में यह परिवर्तन अंतर्भुक्त किया गया है। आगे वह बताते हैं कि देवी दुर्गा को पूजा द्वारा प्रसन्न करके इंद्र सहस्र चक्षु देवता बन गये, जिसकी पुष्टि वाल्मीकि से नहीं होती। फिर भी, तेरहवीं सदी के अंतिम काल में पूर्वी भारत में रचित एक उपपुराण, **बृहद्धर्म-पुराण** में देवी प्रसाद की कथा मिलती है। अगर यह कथा मूल महाकाव्य का अंश कतई नहीं है तो एक अविचल वैष्णव माधवदेव ने इस वैष्णव मत के विपरीत कथा का समावेश क्यों किया है? यह कांड माधवदेव की कृति में परवर्ती क्षेपक हो सकता है अथवा मूल महाकाव्य में ही, जिससे वैष्णव कवि ने इस सर्ग का अनुभव किया, यह कथा रूप शामिल हो सकता है जिसकी माधवदेव शायद उपेक्षा न कर पाये हों।

मूल रूप से एक और महत्त्वपूर्ण विचलन देखने को मिलता है वाल्मीकि द्वारा इस महाकाव्य के रचना-काल के संबंध में। **रामायण** के सुलभ रूपों के अनुसार इस कृति का अधिकांश तभी रचा गया था जब राम अयोध्या में राज कर रहे थे। केवल उत्तरकांड ही इस सर्ग में वर्णित घटनाओं के होने से पहले रचा गया। इसका संकेत **रामायण** की निम्न पंक्तियों से मिलता है :

अनागतस्य यत्किंचित् रामस्य वसुधातले।
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकि भगवनानृपि: ।।

(इस विश्व में राम भविष्य में जो कुछ करेंगे, महामुनि वाल्मीकि ने उस सबको महाकाव्य के परवर्ती अंश—उत्तरकांड—में अंकित कर दिया है।)

बंगाल के **कृत्तिवास** की भाँति ही माधवदेव के अनुसार रामजन्म से पहले ही वाल्मीकि ने समूची **रामायण** का सार नारद को बता दिया था। यह बात शायद परवर्ती पुराणों के प्रभाव के कारण है जिन्होंने इस भ्रांति को लोक-व्यापी बनाया कि **रामायण** की रचना राम जन्म से पहले हुई थी (राम नौ ओपजोते रामायण)।

कुछ अन्य छोटी-छोटी घटनाओं के प्रसंग में भी माधवदेव **वाल्मीकि** की रचना के पाठांतर से भिन्न स्रोतों से सहायता लेते प्रतीत होते हैं। अपनी तीन मुख्य रानियों से दशरथ के विवाह का वर्णन, दशरथ के राज्य पर शनि का प्रभाव, गणेशजन्म की कथा, सीता के रूप में लक्ष्मी का जन्म, गुरु के साथ दशरथ का विवाद, सीता के स्वयंवर में राजाओं से राम का संघर्ष—ये सभी घटनाएँ **वाल्मीकि-रामायण** से नहीं ली गई हैं। इन सबको शायद कथाओं का आकर्षण बढ़ाने के लिए अन्य स्रोतों से शामिल कर लिया गया है। यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि इनमें से कुछ घटनाएँ पंद्रहवीं सदी में रचित **कृत्तिवास** के बंगाली स्वरूप में भी मिलती हैं।

माधवदेव कृत बालकांड (आदिकांड) का अनुवाद राम को विष्णु का रूप बताता है और इस प्रकार प्रिय देवता के सभी आराध्य गुणों से अपने नायक को विभूषित करता है। एक अनुवाद होते हुए भी इसमें स्पष्ट विवरण, प्रांजल शैली एवं अलंकृत वर्णन के कारण मूल रचना की-सी प्रतीति होती है।

माधवदेव की सृजनात्मक और साथ ही वर्णनात्मक क्षमता को उजागर करने वाली अन्य कृति **राजसूयकाव्य** है जिसकी रचना 1570 ईस्वी में हुई थी। इसमें कवि कोच राजा नरनारायण (1540-1584) और उसके यशस्वी अनुज शुक्लध्वज का प्रशस्ति गान करता है। संभवत: इस कृति की रचना की प्रेरणा राजबंधु-युगल से मिली थी, और इसीलिए कवि उनके विद्या-प्रेम एवं ईश्वरोपासकों के प्रति उनके सम्मानभाव की प्रशंसा करता है। काव्य की रूप-रेखा **भागवत** के दशम-स्कंध और महाभारत के **सभापर्व** से ली गई है, जिसे एक आनंदकर काव्य का रूप देने के लिए कवि ने आवृत्त-अलंकृत किया है। इस कृति का प्रमुख उद्देश्य असम के वैष्णव-समुदाय के आराध्यदेव कृष्ण के देवत्व की पुष्टि करना है। पांडवों द्वारा राजसूय यज्ञ की तैयारी, भीम और जरासंध के बीच मल्लयुद्ध, जरासंध की कारा से बंदी राजाओं की मुक्ति और राजसूय यज्ञ समारोह का इस कृति में विशद वर्णन है। राजाओं की सभा में सर्वाधिक

सम्मान योग्य व्यक्ति के रूप में कृष्ण के चयन का शिशुपाल द्वारा उद्धत विरोध, शिशुपाल-वध, समापन समारोह तथा दुर्योधन की हताशा का प्रभावशाली वर्णन किया गया है। द्वारका से इंद्रप्रस्थ तक अनेक राज्यों, मरुस्थलों एवं जंगलों से होते हुए कृष्ण के नेतृत्व में समूचे यादव-समुदाय के भव्य प्रयाण से आरंभ करके **काव्य** हमें नाटकीय घटनाओं और बहुविध दृश्यों की समूची शृंखला से ले जाता है। भीम और जरासंध के सांघातिक संघर्ष का विस्तृत विवरण, भरी सभा में शिशुपाल द्वारा कृष्ण पर अपशब्द-आघात और भीष्म, सहदेव और अंततः कृष्ण के साथ उसका वाग्युद्ध, जो उसका साहस, राजकीय दर्प और कृष्ण के प्रति अंतर्जात विद्वेष दिखाता है, ये सब कवि की अद्भुत कथाशक्ति का प्रदर्शन करते हैं। उसी प्रकार, राजसूय यज्ञ की भव्य, चौंधियाने वाली और प्रभावशाली व्यवस्था का बखान, अवभृत (यज्ञोत्तर) स्नान का वर्णन तथा अंततः पांडवों के नवनिर्मित सुसज्जित राजदरबार में ईर्ष्यालु दुर्योधन के हास्यास्पद व्यवहार एवं खीभ का निरूपण—कवि के कथा सामर्थ्य के सर्वोत्तम उदाहरणों में से कुछ हैं। कुछ खंडों में माघ की रचना **शिशुपाल-वध** का प्रभाव परिलक्षित होता है। यद्यपि कवि ने चरित्रांकन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है तो भी प्रमुख चरित्रों के विशिष्ट गुणों के निरूपण को छोड़ नहीं दिया गया है। यह बात निर्विवाद है कि अपने प्रमुख उद्देश्य की कवि में मिलनेवाली सतत चेतना है कि कृष्ण के दैवी गुणों को उनके जीवन के मानवीय पहलुओं की उपेक्षा किये बिना निरूपित किया जाय। कृष्ण का चित्रण एक आदर्श गृहस्थ, एक प्रेमपूर्ण पति, अपने मित्रों के सजग सलाहकार और नारायण के पूर्ण अवतार के रूप में किया गया है। स्थितियों के सुचारु वर्णन और उनकी प्रभावशाली प्रस्तुति के बावजूद काव्य में सुसंबद्ध संरचना का अभाव खटकता है। महाकाव्य के **सभापर्व** तथा **भागवत पुराण** के दसवें स्कंध से लिये गये कथा तत्त्वों का संयोजन माधव ने सफलता से किया है। उद्धृत सामग्री के अतिरिक्त उन्होंने अपनी स्वयं की सामग्री से **काव्य** को विभूषित किया है। उदाहरण के लिए, यादवसेना का जुलुस तथा द्वारका से इंद्रप्रस्थ तक उसके अभियान तथा भीम एवं जरासंध के बीच मल्लयुद्ध का विशद वर्णन कवि की सृजनात्मक क्षमता का परिचय देते हैं। किंतु अनेक खंडों में उद्घाटित होनेवाली काव्यप्रतिभा के बावजूद कवि कभी-कभी ऐसी घटनाओं को केंद्र में लाता है जो **काव्य** की मुख्य कथावस्तु से संबंधित नहीं हैं। उदाहरण के लिए, राजसूय यज्ञ के बाद दुर्योधन की खीझ और एक गृहस्थ के रूप में कृष्ण की दिनचर्या केन्द्रीय विषयवस्तु के अभिन्न अंश नहीं हैं।

भक्ति-संकलनों तथा अनुवादों में **जन्म रहस्य** के बाद **भक्तिरत्नावली** माधवदेव की दूसरी रचना प्रतीत होती है। इस अनुवाद कार्य को माधवदेव ने अपने गुरु के धामगमन के पश्चात् किया था। जब वे सोलहवीं सदी के आठवें दशक में

बरपेटा के निकट सुंदरिदिया में रह रहे थे। इसे उन्होंने कूच बिहार जाने के पहले पूरा कर लिया था। (**भक्ति रत्नावली** अद्वैत संप्रदाय के संन्यासी विष्णु-पुरी के भक्तिपूर्ण पदों का संकलन है।) यह कृति असम के महापुरुषिया संप्रदाय की चार प्रमुख पवित्र पोथियों में से एक मानी जाती है। अन्य तीन हैं, शंकरदेव कृत **कीर्तन घोष** तथा **दशम स्कंध**, और माधवदेव की रचना **नामघोष**। माधव देव की रचना **नामघोष** भक्तिरत्नावली के संकलकर्ता विष्णुपुरी द्वारा ही उसकी टीका **कांतिमाला** के एक स्तुतिपद के अनुवाद से प्रारंभ होती है। यहाँ उस परिस्थिति का उल्लेख रोचक होगा जिसमें शंकरदेव ने 'भक्तिरत्नावली' की एक प्रति प्राप्त की और उसके असमिया रूपांतरण का कार्य उन्होंने माधवदेव को सौंपा। इन दो वैष्णव संतों की विभिन्न मध्यकालीन जीवनियों में थोड़े विवरणात्मक अंतर के साथ बताया गया है कि कामरूप के एक ब्राह्मण कंठभूषण ने अद्वैत मतावलंबी शिक्षक ब्रह्मानंद के अधीन अध्ययन करते समय एक बार शंकरदेव द्वारा रूपांतरित **भागवत** से उद्धरण देते हुए उसके ग्यारहवें स्कंध के एक जटिल पद की व्याख्या में सहायता की थी। आख्यान के अनुसार शंकरदेव के प्रांजल रूपांतर को सुनकर ब्रह्मानंद ने **कांतिमाला** टीका समेत 'भक्ति रत्नावली' एक पांडुलिपि लाकर असम के अपने इस शिष्य को शंकरदेव को समर्पित करने के लिए दी। पांडुलिपि को मूलतः विष्णुपुरी ने ब्रह्मानंद के संरक्षण में इस निर्देश के साथ छोड़ दिया था कि उपयुक्त अवसर पर यह शंकर-देव को सौंपी जायेगी। जीवनी-लेखकों के अनुसार अपने जन्मस्थान से वापसी पर कंठभूषण ने पांडुलिपि असम के महान वैष्णव संत को समर्पित कर दी। संत ने स्वयं उसका रूपांतर करने के बजाय यह कार्यभार अपने परम विश्वस्त और योग्य शिष्य माधवदेव पर छोड़ दिया। यह कहानी कल्पनाश्रित हो सकती है लेकिन यह तथ्य असंदिग्ध है कि शंकरदेव ने इसे कंठभूषण से प्राप्त किया था, जो इसे बनारस से लाये थे।

कुछ जीवनियाँ बताती हैं कि **भक्ति रत्नावली** की प्रति मिलने पर शंकरदेव ने पहले तो इसके अनुवाद के लिए कोई उत्साह नहीं दिखाया क्योंकि यह एक ज्ञानमार्गी सन्यासी (विष्णुपुरी) की रचना थी। लेकिन विभिन्न अध्यायों पर सरसरी दृष्टि डालने के बाद वे प्रभु के चरणों में परम समर्पण (**एक-शरण**) की अनिवार्यता समेत भक्ति-धारा के समस्त तत्त्वों की व्यापक चर्चा पाकर चकित हुए। कहा जाता है कि पहले ही एक **भक्तिरत्नाकर** का संकलन कर चुके शंकरदेव ने यह टिप्पणी की थी : "यदि यह प्रति मुझे पहले मिल गई होती तो **भक्तिरत्नाकर** के संकलन का इतना श्रम मैंने नहीं किया होता।" माधवदेव को इसके असमिया रूपांतर का कार्यभार सौंपा गया।

अद्वैत दर्शन की शांकर श्रेणी से संबंधित विष्णुपुरी ही **भक्ति रत्नावली** के

मूल संकलनकर्ता थे। अद्वैत मार्ग के संन्यासी होने के बावजूद वे एक संकल्पित वैष्णव थे जो भक्ति मार्ग की प्रभाविता में आस्था रखते थे। **भक्तिरत्नावली** भक्ति के विविध पक्षों पर **भागवत-पुराण** से लिये गये भक्ति-पदों का संकलन है। तेरह अध्यायों वाली समूची कृति का माधवदेव ने असमिया में पद्यानुवाद किया। साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं होते हुए भी यह कृति असम वैष्णव पंथ की एक आधारभूत रचना मानी जाती है। इसका यह कारण यह है कि नवधा भक्ति का निरूपण करने के अलावा यह कृति शंकरदेव द्वारा अभिशंसित **श्रवण** तथा **कीर्तन** पर विशेष बल देती है। यह कृति आराध्य देव के प्रति पूर्ण समर्पण भाव (एक शरण) पर भी जोर देती है। असम का वैष्णव-मत भी भक्तिक्रिया के विकास एवं साफल्य के लिए **एकशरण** की अनिवार्यता मानता है। स्वभावतः, इसीलिए, **भक्ति रत्नावली** ने असम के वैष्णव साहित्य में ईर्ष्याजनक स्थान प्राप्त कर लिया हैं। इस कृति के अनुवाद में स्वयं विष्णुपुरी की टीका **कांतिमाला** का भी प्रयोग माधव ने किया था।

लगभग तीन सौ पदों वाली कृति **जन्म-रहस्य** का अनुवाद कोच राजा नरनारायण (1540-1584) के मंत्री एवं सेनापति राजकुमार शुक्लध्वज की धर्मपत्नी राजकुमारी भुवनेश्वरी उर्फ़ कमलप्रिया की इच्छाओं के विरुद्ध किया गया था। **कथागुरुचरित** के अनुसार शुक्लध्वज ने ही इसका अनुवाद असमिया में करने के लिए शंकरदेव से अनुरोध किया था, लेकिन गुरु ने यह काम माधव-देव को सौंप दिया। यह कृति शंकरदेव को वाग्विदग्ध श्रद्धांजलि देती है, जिनकी कवि ने ईश्वर के अवतार के रूप में वर्णन किया है। मूल संस्कृत रचना को अब खोजा नहीं जा सकता, लेकिन अनुवादक की समापन टिप्पणियों से यह पता चलता है कि वैष्णवजनों के लिए स्वीकार्य बनाने के लिए मूल सामग्री को **भागवत-पुराण** के कुछ विवरणों से मिला दिया गया था। यह कृति सृष्टि के सृजन व संहार की चर्चा करती है और नारायण के दस अन्य अवतारों के साथ-साथ वासुदेव कृष्ण की लीलाओं का विवरण देती है। इसमें वैष्णवमत की असमिया शाखा के सिद्धांतों एवं आदर्शों का भी निरूपण किया गया है।

नाम मालिका की रचना माधवदेव ने कूच बिहार में रहते हुए अपने जीवन के अंतिम वर्षों में की थी। इस कृति का मूल संकलन पंद्रहवीं सदी में ओड़िसा के राजा पुरुषोत्तम गजपति के दरबार के ब्राह्मणों ने किया था। संस्कृत भाषा में किये गये मूल संकलन अंतर्गत कलियुग में कृष्ण नाम की महिमा एवं प्रभाव दिखाने के लिए, **भारत (महाभारत)**, पुराणों, स्मृतियों तथा आगमों से यहाँ रचनाएँ ली गयी हैं। लेकिन, जैसा स्वयं माधवदेव के वक्तव्य से पता चलता है, मूल संकलन बिखरा हुआ और अव्यवस्थित था। असमिया रूपांतर में छः सौ पद हैं। इसमें पवित्र नाम का महिमा का विशद वर्णन है। कृष्ण के पवित्र

नाम का महिमागान करते हुए भी ईश-साक्षात्कार के लिए अनिवार्य पात्रता की ओर ध्यान दिलाना माधवदेव नहीं भूले हैं। रूपांतर कार्य राजा लक्ष्मी नारायण (1584-1622) के एक मंत्री विरूपाक्ष क़ाज़ी के निर्देश पर लिया गया था। लगता है माधव इससे बहुत खुश नहीं थे। क्योंकि प्राप्त होने वाले परिणामों की एक समूची सूची देकर पवित्र नाम के महिमा गान के लिए प्रेरणा की अतिरंजना से वे सहमत नहीं हो सकते थे। उनके अनुसार प्रभुनाम का स्मरण अथवा कीर्तन स्वयं में एक सिद्धि है और किसी को बाद में मिलने वाले फल की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। संभवत: इसीलिए माधवदेव की ही रचना होने के बावजूद **नाममालिका** को वैष्णव मंडलियों में अधिक लोकप्रियता नहीं मिली।

माधवदेव की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भक्ति-रचना **नामघोष** है जो इस महान संत की महत्त्वाकांक्षी रचना ही नहीं बल्कि भारतीय साहित्य की सर्वाधिक उदात्त रचनाओं में से एक है। असम की जनता द्वारा अत्यंत सम्मानित यह कृति व्यापक रूप से पढ़ी, स्मरण और उद्धृत की जाती है। इसमें एक हज़ार ऋचाएँ होने के कारण इसे **हजारी घोष** भी कहा जाता है। इन हज़ार पदों में लगभग आधे **गीता** तथा **भागवत-पुराण** समेत विभिन्न संस्कृत स्रोतों से अनुवाद हैं। लेकिन अनूदित पद इतने परिष्कृत छंदों और रूपों में बँधे हैं कि उन्हें अनुवाद की अपेक्षा पुनर्रचना कहना अधिक उपयुक्त होगा। लगभग सहस्र पदों का सतत् प्रवाह आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए उत्कंठित, सच्चे रूप में समर्पित आत्मा की छवि उकेरता है। यह पुस्तक ईश्वर-भक्तों के धार्मिक अनुभवों, दार्शनिक आस्थाओं तथा उपासना की उत्कंठा को अभिव्यक्ति देती है। जब माधवदेव की जीवन संध्या में उनके अनुयायियों ने किसी व्यक्ति के चयन का आग्रह किया, जिससे वे इस नश्वर विश्व से गुरु के प्रस्थान के बाद निर्देश प्राप्त करते, तब माधव ने **नामघोष** के निरंतर पाठ करते रहने की बात पर इस प्रकार ज़ोर दिया :

> "देखो, मैंने **घोष** (**नामघोष**) की रचना की है जिसमें वह सब कुछ अंकित है जो मैं कहना चाहता था। जो भी **घोष** को पढ़ता और समझता है वह वास्तव में मुझे वहाँ पायेगा। मैंने अपनी सारी शक्ति और विद्वता **घोष** में सँजो दी है। जो भी मुझे खोजना जानता है, वह निश्चय ही मुझे वहाँ पायेगा।"[11]

यद्यपि **नामघोष** मुख्यत: परम सत्ता के पवित्र नाम के निरूपण को समर्पित है, यह भक्ति के अन्य प्रासंगिक या आनुषंगिक तत्त्वों को भी ध्यान में लाता है।

---

[11] दैत्यारि ठाकुर : शंकरदेव-माधवदेव-चरित्र, अध्याय 73, पृष्ठ 49-50

शंकरदेव द्वारा प्रचारित वैष्णव मत भक्ति के चार आधारभूत तत्त्वों—**नाम**, **देव** **गुरु** तथा **भक्त**—पर ज़ोर देता है। पवित्र नाम का गुणगान करते हुए भी **नामघोष** अन्य तीन परस्पर संबंधित धारणाओं पर भी समान बल देता है। अनेक उपखंडों में विभाजन के बावजूद मूलत: इसके तीन खंड हैं। पहले खंड में नामधर्म के सैद्धांतिक अथवा आधारभूत पहलुओं की चर्चा है। दूसरे खंड में आत्म निषेध मूलक भक्ति-भावना तथा आराध्य देव के चरणों में उत्कंठित आत्म-समर्पण संबंधी गीतिप्रधान पद हैं। अंतिम खंड में विष्णु-कृष्ण के नाम और गुण से संबंधित सुव्यवस्थित तालबद्ध गेय पदावलियाँ हैं। असम के वैष्णव साहित्य के सुधी समीक्षक डॉ. बाणीकान्त काकती इन पदावलियों में तीन विचार-धाराओं का प्रवाह पाते हैं। पहली है आध्यात्मिक गुरु एवं देव के प्रति गहन समर्पण से उपजा आत्मनिषेधमूलक विनय भाव। भक्ति-आह्लाद की उमड़ती लहरों में अहंभाव डूब जाता है और उसे कहीं भी सतह पर नहीं उभरने दिया जाता। दूसरी स्पष्ट परिलक्षित विशेषता है माधवदेव के आध्यात्मिक गुरु शंकरदेव को समर्पित निश्छल स्तुति एवं संवर्धना। यह कृतज्ञता भाव समूचे **नामघोष** में बार-बार गूँजता रहता है और ये दो उपधाराएँ अंतत: आराध्यदेव के प्रति आत्म विलोपनकारी उत्कंठित भक्तिभाव की उमड़ती धारा में विलीन हो जाती हैं। **नामघोष** का प्रारंभिक पद उपरोक्त तीन विचार-प्रवृत्तियों का संकेत देता है :

मैं मुक्ति की ओर से उदासीन भक्त का नमन करता हूँ और प्रेम तथा प्रसाद गुण से युक्त समर्पणभाव की कामना करता हूँ। मैं उस देवता के चरणों में शरण लेता हूँ जो यादवों का स्वामी है, समूची सृष्टि का सिरताज है, किंतु अपने भक्तों के प्रति अनुराग रखता है।"

इस पद में माधवदेव उपासकों के सामने विनत होते हैं, शंकरदेव की भाँति जो मुक्ति के सवाल के प्रति उदासीनता दिखाते हुए अपने आप में एक सिद्धि समझते हुए ईश-सेवा से आनंदित होते हैं, प्रभु के पवित्र नाम के उच्चारण तथा गायन की प्रक्रिया में रसमयी भक्ति प्रदर्शित करते हैं और कृष्ण को ही एकमात्र आराध्य देव के रूप में चुनते हैं और उनके चरणों में संपूर्ण आत्मसमर्पण करते हैं। यह पद व्यवहारत: असम वैष्णवमत के चार आधारभूत तत्त्वों—नाम, देव, गुरु और भक्त—का उद्‌घोष करता है।

नामघोष के केंद्रीय धार्मिक सिद्धांतों का सार इस प्रकार है :

1. यह सृष्टि के रचयिता, पालक और संहारक होने के कारण आत्मा के उद्धार में समर्थ एकमात्र देव विष्णु कृष्ण को सृष्टि का एक मात्र स्वामी मानते हुए एकेश्वरवादी सिद्धांत पर ज़ोर देता है। विष्णु-कृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य देव की पूजा नहीं की जानी चाहिए क्योंकि काल और माया पर उन्हीं का नियंत्रण है।

2. नाम और आराध्य देव (**नामी**) समरूप हैं, इसलिए नाम एक जीवंत सत्ता है। नामोच्चार अथवा जप मुक्ति की ओर ले जाता है।
3. भक्ति का संस्कार स्वयं में एक सिद्धि है। यह निरपेक्ष है। एक सच्चा उपासक मुक्ति के पीछे नहीं भागता बल्कि भक्ति की प्रक्रिया में ही विशुद्ध आनंद पाता है। भक्तिरहित ज्ञान और कर्म मुक्ति की ओर नहीं ले जा सकते। मुक्ति निष्काम कर्म की स्वाभाविक परिणति है; उसके लिए किसी अलग प्रयास की आवश्यकता नहीं है।
4. श्रवण तथा कीर्तन को ईश-पूजा का सर्वप्रभावी प्रकार माना गया है और स्वामी के प्रति एक समर्पित सेवक के रुझान को ईश प्राप्ति की सर्वोत्तम विधि।
5. **नामघोष** में शंकरदेव को सर्वश्रेष्ठ गुरु, **भागवत-पुराण** को सर्वोच्च धर्मग्रंथ और भारतभूमि को विश्व का अप्रतिम देश घोषित किया गया है।
6. **नामधर्म** जाति, आस्था और स्त्री-पुरुष संबंधी कोई भेदभाव किये बिना सबके लिए खुला है। पहले जनसमुदाय से अलग, गुह्य रखे गये इस सार्वभौम धर्म को करुणा-भाव-सहित शंकरदेव ने सर्वसुलभ बनाया।

नामघोष की धार्मिक शिक्षाएँ बड़े प्रशंसनीय ढंग से उसके दार्शनिक विचारों से घुली-मिली हैं। दार्शनिक आधार वेदांत से प्राप्त हुआ है, जिसे सिद्धार्थ स्वामी ने अपनी शक्ति-मीमांसा से पुष्ट किया था। यद्यपि असम के वैष्णवमत ने परम यथार्थ के सगुण तथा निर्गुण दोनों पक्षों को मान्यता दी है, **नामघोष** सगुण पक्ष पर ही विशेष ज़ोर देता है क्योंकि अनंत तथा निर्गुण ब्रह्म का बोध सामान्य जन नहीं कर सकते। **नामघोष** में वर्णित ईश्वर अंतर्भूत और भावातीत दोनों ही रूपों में विद्यमान है। वही एकमात्र यथार्थ, समस्त सुख और संचेतना है। वह शाश्वत, अनंत, सर्वव्यापी, अद्वितीय और अपरिवर्तनशील है। वह सृष्टि का कारण और प्रतिफल दोनों ही है। परिवर्तन, क्षरण तथा अवसान की प्रक्रिया के अधीन रूप और नाम की प्रत्यक्ष बहुलता के पीछे यथार्थ एक ही है और वह साधक के दृष्टि-कोण के अनुसार ब्रह्म, परमात्म या भागवत इत्यादि रूप में जाना जाता है। ईश्वर सर्वव्यापी है और आंतरिक स्व के नियंता के रुप में सभी हृदयों में निवास करता है। माधवदेव कहते हैं : "मैं सच्चाई का मार्ग जानता हूँ फिर भी मेरा मन इसके अनुसरण को उद्यत नहीं होता और न यह दुर्गुण के पथ से मुँह मोड़ता है। हे मेरे मन में निवास करनेवाले स्वामी, मेरे स्व के नियंता के रूप में तुम जो

आदेश करोगे, मैं वही करूँगा।''[12] माधवदेव ने **माया** की भ्रामक शक्ति को और ईश्वर की **आवरण** एवं **विक्षेपण** दो क्रियाओं वाली दिव्य सृजनात्मक शक्ति का साक्षात् कर लिया है। पहली क्रिया तो चीज़ों के सही ज्ञान को आवृत करती है और दूसरी हमारी दृष्टि को विकृत बनाती है। इसीलिए माधवदेव ने माया को बारंबार अविद्या कहा है। वे इसके प्रभाव से उबरने के लिए सबका आह्वान करते हैं ताकि परम आत्मा से साक्षात्कार हो सके। यद्यपि अंतिम विश्लेषण में वैयक्तिक आत्मा ईश्वर का ही अंश है, फिर भी माया-जनित अज्ञान अथवा भ्रांति के कारण यह विश्व में बार-बार जन्म, मृत्यु तथा यंत्रणा से गुज़रती है। ईश्वर पुरुष तथा प्रकृति अथवा माया दोनों का नियंत्रक है। ईश्वर की कृपा से व्यक्ति माया से मुक्त हो सकता है यदि वह प्रभु के चरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण कर दे। ईश्वर दयावान तथा अपने भक्तों के लिए स्नेहपूर्ण है। **नामघोष** से अनूदित निम्न पंक्तियाँ प्रभु के प्रति माधवदेव द्वारा अनुशंसित, संम्पूर्ण समर्पण भाव की एक झलक देंगी :

> तीनों लोकों में मुझसे बड़ा पापी और कोई नहीं और तुम्हारे समान उद्धारक भी और कोई नहीं है। हे प्रभु गोविंद, मैं तुम्हारे चरणों पर नतमस्तक हूँ और अपने प्रति तुम्हारे वैसे व्यवहार की प्रार्थना करता हूँ जैसा तुम मेरी स्थिति के किसी व्यक्ति से करना उचित समझोगे।''
>
> ''अज्ञानी और मूर्ख होने के कारण मैं प्रतिदिन हज़ारों अपराध कर रहा हूँ। हे सर्वव्यापी मधुसूदन, मुझे अपना सेवक समझकर क्षमा करो।
>
> ''हे दयासागर हरि, मैं तुम्हारी करुणा की याचना करता हूँ। मैं तुम्हें अपनी ही आत्मा, मित्र और स्नेही गुरु मानता हूँ। इसलिए मुझे ठुकराओ नहीं।''
>
> ''मैं भक्तिपूर्वक तुम्हारे चरण पकड़ता हूँ। इस बार मुझे ठुकराओ नहीं। हे मेरे हरि नारायण, पापियों के उद्धारक के रूप में तुम्हारी समानता और कोई नहीं कर सकता।''[13]

माधवदेव कर्मकांड तथा पुरोहितवाद के विरुद्ध थे क्योंकि कर्मकांड के अनुपालन में भक्ति की शायद ही कोई भूमिका हो। इसका अर्थ यह नहीं कि धार्मिक मामलों में उन्होंने अनुशासनहीनता और स्वैरता को बढ़ावा दिया। **नामघोष** के अनेक पदों में वे स्पष्ट कहते हैं कि इस विश्व से जुड़े भक्तों को वैदिक निर्देशों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इसीलिए उन्होंने उन छद्म वैष्णवजनों की बुरी तरह भर्त्सना की, जो अपने को वैष्णव घोषित करते हुए तथा हरिनाम का

---

[12] नामघोष, पद 81

[13] उपरोक्त, पद 78-80, 309, 312

झंडा उठाते हुए भी स्वैराचार में लिप्त थे और ऐंद्रिक सुखों के पीछे भागते थे।

नामघोष का अंतिम 150 पदों वाला भाग **नामछंद** आराध्य देवों के नामों की आवृत्ति मात्र है। पहले 850 पदों के विपरीत इन पदों में न तो काव्यात्मकता है और न ब्रह्मज्ञान। टी. एन. शर्मा ने सही टिप्पणी की है :

> "नामघोष में ब्रह्मविवेचन को कवि माधवदेव के जादुई स्पर्श ने प्रांजल कविता में रूपांतरित कर दिया है। वस्तुतः पुस्तक के अंत में ब्रह्मज्ञानी तो तिरोहित होता ही है, कवि भी पृष्ठभूमि में चला जाता है और रह जाती है एक रहस्यवादी की आभा। माधवदेव की यात्रा विद्वत्तापूर्ण ब्रह्मज्ञान से आरंभ होती हुई कविता से गुज़रती है और रहस्यवाद में समाप्त होती है।"[14]

[14] बी. काकती (सं०) आस्पेक्ट्स आफ अर्ली असमीज़ लिटरेचर, माधवदेव संबंधी लेख, पृष्ठ 189-208

6

नाट्य-लेखन

वैष्णव परंपरा के अनुसार माधवदेव ने छः एकांकी नाटक लिखे लेकिन उनके नाम से नौ नाटक अब भी उपलब्ध हैं। उनमें से कुछ को तो आज के शोध-कर्मी क्षेपक मानते हैं। वैष्णव काल के 21 नाटकों का एक विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना के साथ संकलन, संपादन और प्रकाशन करने वाले स्व. के. आर. मेधी ने अपने संग्रह में माधव के नौ नाटकों को शामिल किया है। उसने इनमें से कुछ नाटकों को संदिग्ध बताया है और यह निष्कर्ष दिया है कि कुछ परवर्ती लेखकों ने अपनी कृतियों को लोकप्रिय बनाने के लिए उनके साथ माधव का नाम जोड़ दिया। उनके क्षेपक होने के प्रमाणों का उल्लेख पहले किया जा चुका है।[15] चार संदिग्ध रचनाओं, **भूषण-हरण**, **रास-झुमुरा**, **कटोरा-खेला** तथा **ब्रह्मा-मोहन** में अंतिम सबसे कम विवादास्पद प्रतीत होती है क्योंकि यह **भोजनविहार** का संपूरक अंश है जो माधवदेव की ही वास्तविक कृति मानी जाती है। **ब्रह्मा-मोहन** में निरूपित क्रम के बिना परवर्ती नाटक का कथानक अधूरा प्रतीत होता है। और फिर इस नाटक पर माधवदेव की विशिष्ट लेखन शैली की छाप मिलती है। इसलिए **ब्रह्मा-मोहन** के माधव की वास्तविक रचना होने की संभावना है। है। बहरहाल, तीन अन्य नाटकों के मामले में संदेह बना रहता है, यद्यपि इक्का-दुक्का कथाओं में **रास-झुमुरा** का उल्लेख भी माधव की एक रचना के रूप में मिलता है।

कुछ जीवनियों के अनुसार माधव ने दो अन्य नाटकों **रामायण** तथा **गोवर्धन**

---

[15] सुप्रा, पृष्ठ 21-22, के. आर. मेधी, **इन्ट्रोडक्शन टू अंकावली**, पृष्ठ LXXXIV-LXXXV भी देखें।

यात्रा की भी रचना की, जो भावी पीढ़ी के लिए हमेशा के लिए विलुप्त हो गये हैं। **गोवर्धन यात्रा** के मंचन का वर्णन करते हुए सत्रहवीं सदी के सबसे पहले वैष्णव जीवनीलेखकों में से एक दैत्यारि ठाकुर ने प्रसंगत: एक घटना का उल्लेख किया है। उपरोक्त नाटक के मंचन का प्रबंध करते हुए माधवदेव ने मंच पर गोवर्धन-गिरि का संकेत देने के लिए कदली-स्तंभ की एक नकली पहाड़ी खड़ी की, जिसके शिखर पर एक सीढ़ी की सहायता से पहाड़वासी जैसी साजसज्जा के के साथ एक ब्राह्मण को भेजा। ब्राह्मण बड़ी सहजता से ऊपर गया और नक़ली पहाड़ी के शिखर पर बनी सीट पर बैठ गया। सीढ़ी उतार ली गई और तमाशा शुरू हुआ। तमाशा चल ही रहा था कि बारिश होने लगी और सभी लोग पहाड़ी की चोटी पर चढ़े बेचारे ब्राह्मण की दुर्दशा को बिलकुल भूल गये शरण के लिए भागे। भारी वर्षा से वह व्यक्ति बिलकुल भींग गया। बारिश रुकने पर ब्राह्मण की दुर्दशा का ध्यान आते ही माधवदेव मंच की ओर गये और उसे उतरने में सहायता की।

रामयात्रा के संबंध में एक जीवन में उल्लेख मिलता है कि स्वयं माधवदेव ने एक या दो अवसरों पर इसका मंचन किया लेकिन बाद में इसको अनावश्यक लंबाई के कारण नष्ट कर दिया गया। वैष्णव जीवनियों से मिलनेवाले साक्ष्य से निश्चित होता है कि **रामयात्रा** में रामायण की समूची कथा की चर्चा है और इसके पूर्ण मंचन में पाँच दिन लगे थे। **गोविंद यात्रा** में इंद्र के प्रकोप से होने वाली भीषण वर्षा से गोकुलवासियों की रक्षा करने के लिए कृष्ण द्वारा गोवर्धन चोटी धारण किये जाने का चित्रण है। चूँकि उपरोक्त दो नाटकों के लिखित निदर्शन आज उपलब्ध नहीं हैं, उनकी प्रकृति तथा साहित्यिक गुणवत्ता का निर्धारण संभव नहीं है।

माधवदेव के नाटकों की चर्चा करने से पहले शंकरदेव द्वारा प्रस्तावित प्रारंभिक असमिया वैष्णव नाटकों की सामान्य प्रवृत्ति एवं विशेषता के बारे में कुछ कहना समुचित होगा। स्वयं नाटककारों ने अपनी कृतियों में इन नाटकों को **नाट**, **नाटक** और **यात्रा**, कुछ जीवनी लेखकों ने **अंक** तथा **झुमुरा** और जन-समुदाय ने **अंकिया-नाट** कहा है। **नाट** और **नाटक** प्राचीन नाट्यशास्त्र के सुपरिचित शब्द हैं। मूलत: एक प्रकार के धार्मिक जुलूस का संकेत देने वाले शब्द **यात्रा** ने बाद में चलकर नृत्यगीत एवं नाट्य-प्रस्तुति वाले धार्मिक समारोह का अर्थ ग्रहण कर लिया। **रथ-यात्रा**, **झूलन-यात्रा**, और **रास-यात्रा** जैसे वर्तमान समारोह मूल शब्द में अर्थान्तर का संकेत देते हैं। नृत्य एवं नाट्य के वैसे समारोहों के अंश बन जाने के साथ ही शब्द का अर्थ और बदल कर लोकरंजक

नाट्य-प्रस्तुति इंगित करने लगा।[16] संभवत: शंकरदेव के समय सामान्यतया **यात्रा** नाम से परिचित मुखर धार्मिक स्वर वाली नाट्य-प्रस्तुतियाँ भारत में होती थीं और इसीलिए स्वयं शंकर ने उन्हें **यात्रा** नाम दिया। **अंक** तथा **अंकिया-नाट** पद उस प्रकार के साहित्य के लिए प्रयोग किया जाता है जिनमें कथा की अभिव्यक्ति **अंक** अथवा नाट्य-खंडों में होती है। दरअसल इनमें से किसी भी नाटक में न तो कोई विभाजन है और न उनमें कहीं अंक शब्द आता है। यद्यपि इनमें घटना एवं दृश्य का कोई विभाजन नहीं मिलता, समूचे नाट्य को एक ही घटना माना जाता है, इसलिए इसे **अंक** अथवा अंकिया कहते हैं। इन नाटकों की भाषा मैथिली पर आधारित कृत्रिम साहित्य भाषा ब्रजबुलि है जो आंचलिक अभिव्यक्तियों से मिलकर और पुष्ट हुई है। यद्यपि नाटक की संरचना संस्कृत नाटकों से ली गई है, इसकी अपनी विशेषता है और किन्हीं दृष्टियों में यह संस्कृत नाटकों से बिल्कुल अलग जाती है। नाटक का प्रारंभ करने वाला सूत्रधार समूची प्रस्तुति के दौरान मंच पर बना रहता है। वह मंगलाचरण करता है, दर्शकों के सामने चरित्रों को प्रस्तुत करता है, अपने गद्य विवरण से कथानक के बिखरे सूत्र जोड़ता है, और संगीत-टोली (गायन-बायन) के साथ गीतों से दर्शकों का मनोरंजन करता है। इस प्रकार के नाटकों की एक और विशेषता है इसका गीत्यात्मक आकर्षण और इसमें नृत्य एवं गीत की प्रधानता, यद्यपि गद्य संवादों समेत नाटकीय तत्त्वों का अभाव नहीं होता। समग्र रूप से, सोलहवीं सदी के असम के वैष्णव नाटक भारत के मध्यकालीन नाट्य साहित्य की एक विशिष्ट विधा रचते हैं। एक पूर्णकालिक सूत्रधार की उपस्थिति स्वभावत: कथानक का अंकों में विभाजन अनावश्यक बना देती है क्योंकि काल एवं स्थान का अंतराल सूत्रधार स्वयं भर देता है।

एकमात्र अपवाद **अर्जुन-भंजन** के अलावा माधवदेव के सारे नाटक झुमुरा नाम से जाने जाते हैं। माधवदेव ने अपने किसी नाटक में इस पद का प्रयोग नहीं किया है। माधव की नाटिकाओं को इंगित करने के लिए इस शब्द को लोकप्रिय बनाया परवर्ती जीवनी लेखकों और अनुकृतिकारों ने। झुमुरा संभवत: झूमुर शब्द का अर्थ विस्तार है जो एक लघु ताल के अनुसार, बहुधा नृत्य के साथ सामूहिक रूप से गाये जाने वाले श्रृंगार गीतों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसे आमतौर पर छोटा नागपुर तथा संथाल परगना की आदिवासी महिलाएँ नगाड़े की छदबद्ध ताल पर गाती हैं। बंगाल में झुमुर-गान नाम की एक अर्ध-नाट्य प्रस्तुति मिलती है जिसमें वृंदावन के ग्वाल बालों के वेश में

---

[16] भवभूति के नाटकों, **मालती-माधव** तथा **उत्तर-रामचरित** का मंचन **काल-प्रियनाथ** समारोह के अवसर पर किया गया था।

बालकों के दो दल परिष्कृत गीत-नृत्य के माध्यम से जिसके बीच अश्लील संकेत भी मिलते हैं, सांगीतिक शास्त्रार्थ में लगते हैं। केंद्रीय विषयवस्तु राधा-कृष्ण के प्रेम से संबंधित होते हुए भी यह एक भोंड़े स्तर से ऊपर उठ नहीं पाता। संगीत-दामोदर ने झुमुरी नामक शृंगार-गीत का उल्लेख किया है जो माध्वी (मधु) की ही भाँति मधुर और मादक है तथा छंद नियमों से पूरी तरह नहीं बंधता।

प्रायः शृंगार-बहुला माध्विका-मधुरा मृधुः।
एकैव झुमुरी लोके वर्णादि-नियमोज्झिता॥

(झुमुरी एक प्रकार का शृंगार-गीत है। यह मधु से बनी मदिरा की भाँति मधुर और मृदु है। इसमें छंदयोजना संबंधी कोई दृढ़ नियम नहीं है।)

उपर्युक्त उदाहरणों से यह तर्कसम्मत निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि **झुमुर** अथव **झुमुरा** शृंगार-भावों की प्रधानता वाला गीत है। माधव के नाम से क्षेपक रूप में जोड़ दिये गये, लेकिन वास्तव में बाद के नाटककारों द्वारा लिखे दो नाटक राधा एवं कृष्ण के शृंगार-प्रेम की चर्चा करते हैं। शृंगार-प्रकृति की नाटिकाओं का संकेत करने के लिए झुमुर नाम अपनाने के लिए शायद ये नाटक ही अधिक उत्तरदायी हैं। एक नयी संज्ञा के साथ इन नाटकों के एक बार माधवदेव के नाम से लोकप्रिय हो जाने के बाद उनकी वास्तविक नाटिकाएँ भी **झुमुरा** के नाम से जानी जाने लगीं। माधवदेव के लघुतर नाटकों का परिचय देने के लिए झुमुर शब्द के प्रयोग का एक और स्पष्टीकरण मिलता है। **भागवत-पुराण** की कथा पर आधारित **अर्जुन-भंजन** के अतिरिक्त माधवदेव की नाटिकाओं में समूची कथा के संकेत नहीं मिलते, बल्कि वे एक ही घटना अथवा स्थिति पर आधारित होते हैं। कृष्ण की बाल-लीलाओं का निरूपण करनेवाले इन नाटकों में अन्य नाट्यचरित्र गोपियाँ और यशोदा हैं। इन नाटकों में कृष्ण के अतिरिक्त कोई अन्य पुरुष चरित्र नहीं है। इसलिए यह असंभाव्य नहीं कि शंकरदेव के बृहत्तर नाटकों तथा माधवदेव के ही **अर्जुन-भंजन** से इन नाटकों की विशिष्टता दिखाने के लिए इनको झुमुरा नाम दिया गया। जबकि **अर्जुन-भंजन भागवत-पुराण** की कथा पर आधारित एक समूचे कथानक पर आधारित है, माधवदेव के अन्य नाटक चतुर कृष्ण द्वारा रची गयी हास्य-स्थितियों के इर्द गिर्द विकसित किये गये हैं।

निर्विवाद रूप से माधव द्वारा ही रचित नाटकों में **अर्जुन-भंजन** सबसे पहली रचना है। यह संभवतः गणक-कुची में माधव के प्रवास के समय 1555 ईस्वी में लिखी गई थी। इसके प्रथम मंचन में शंकरदेव नंद की भूमिका में और माधव उपानंद के रूप में आये थे। अगला नाटक **चोर धरा** 1570 के आसपास लिखा गया जब वे बरपेटा के पास सुंदरिदिया स्थित क्षीर-मराल रियासत में रह रहे

थे। **भोजन-विहार** की रचना बरपेटा में 1585 के आसपास हुई। अन्य नाटक संभवत: 1575 और 1585 के बीच लिखे गये जब माधव सुंदरिदिया में थे, जहाँ जीवनी लेखकों के अनुसार वे बारह साल तक रहे। अट्ठारहवीं सदी की एक वृहद् गद्य-रचना **कथागुरुचरित** के अनुसार माधवदेव ने **रास झुमुरा** और **कटोरा-खेला** नाटक सुंदरिदिया में ही लिखे, किंतु इन कृतियों की प्रामाणिकता अत्यंत संदिग्ध होने के कारण इस वक्तव्य को बेहिचक स्वीकार नहीं किया जा सकता। **राम यात्रा** अथवा **रामभावना** बरपेटा में उनके प्रवास के अंतिम चरण में अर्थात् 1585-1590 के बीच लिखी गयी किंतु मंचनयोग्य विस्तार न होने के कारण इसे नष्ट कर दिया गया। **गोवर्धन यात्रा** की भी रचना 1575 के आसपास हुई जब वे सुंदरिदिया में थे, लेकिन यह नाटक अब उपलब्ध नहीं है।

दधि-मथन नाम से लोकप्रिय **अर्जुन-भंजन** का कथानक भागवत-पुराण (X, 9-11) से लिया गया है। नाटक में **लीलाशुक** (बिल्वमंगल) के **कृष्ण कर्णामृत** से कुछ पदों का समावेश किया गया है। संक्षेप में कथा यह है :

एक दिन यशोदा अन्य गोपियों के साथ दूध बिलो रही थीं तभी कृष्ण स्तन से दुग्धपान के लिए उनके पास आये। अपने शिशु की इच्छा का प्रतिरोध न कर पाकर दूध बिलोने का काम औरों पर छोड़ कर यशोदा ने कृष्ण को अपने सीने से लगा लिया और स्तन से दूध पिलाने लगीं। ऐसा करते हुए ही उन्होंने दूध के मटके में उफान आते देखा। कृष्ण को जल्दी में गोदी से उतारकर वे मटका हटाने के लिए बढ़ीं। इसपर लाड़ले कृष्ण ने कुपित होकर मटका और मथनी तोड़ दी, चोरी से भंडार में घुसे, ताज़ा मक्खन खाने लगे और बहुत सारा मक्खन बंदरों के लिए फेंक दिया। इसी बीच यशोदा वापस आ गयीं और कृष्ण का नटखट व्यवहार देखकर गुस्से से भर गईं। बहुत पीछा करने पर वे शिशु कृष्ण को पकड़ पाईं और उन्हें एक ओखली से बाँधने का प्रयास करने लगीं। लेकिन यह देखकर वे चकित हुईं कि जितनी भी रस्सी वे जुटातीं उसकी लंबाई कृष्ण को बाँधने के लिए आवश्यक लंबाई से छोटी पड़ती गई। अंततः वे कृष्ण को बाँधने में सफल हुईं और तब अपने घर-परिवार के काम में लग गईं। कृष्ण ओखली को घसीटते हुए आँगन के पार उसके किनारे खड़े अर्जुन के दो पेड़ों तक ले गये। उन्होंने पेड़ों के बीच से ओखली घसीट लेने का प्रयास किया। भारी कोलाहल के साथ ये दोनों पेड़ ज़मीन पर गिर पड़े। यह सुनकर यशोदा समेत सभी गोपगोपियाँ उस स्थल पर पहुँचे और कृष्ण को ओखली से अलग किया। नाटक का अंत कृष्ण के कारण यशोदा और नंद के बीच हुए झगड़े के एक दृश्य के साथ होता है। एकलौते बच्चे की माँ तथा एक संपन्न परिवार की सहिष्णु स्वामिनी के रूप में यशोदा का चरित्रांकन खूबी से किया गया है। एक नटखट बालक के रूप में बर्ताव करते हुए भी कृष्ण अपनी अलौकिक भूमिका से अवगत हैं।

अगले नाटक **चोरधरा** में एक हास्य घटना का चित्रण है जिसमें कृष्ण तथा एक गोपी शामिल हैं। इसमें **नांदीश्लोक** के रूप में **बिल्वमंगल** के **कृष्णकर्णामृत** का एक पद है। नाटक के समापन अंश में उसी कवि के एक दूसरे पद का समावेश किया गया है। नाटक का प्रारंभिक अंश माधवदेव की ही खोज है। एक गोपी ने अपने घर में कृष्ण को मक्खन चुराते पाया। दरवाज़ा बंद करके उसने अन्य, पड़ोसी गोपियों को बुलाया, कृष्ण को रँगे हाथ पकड़ने के लिए। संकट का आभास होते ही कृष्ण ने अपने बचाव के लिए साथी ग्वालबालों को गुहार लगाई। उनके आ जाने से सबल हो गये कृष्ण ने गोपी के मुँह पर मक्खन पोत दिया और उसे आँचल पकड़कर घसीटते हुए गली में ले गये। इसके साथ ही ज़ोर-ज़ोर से उन्होंने सबको बताया कि चोर वे नहीं बल्कि स्वयं वह ग्वालबाला थी। गोपी तथा उसकी सहेलियों ने कृष्ण के छल बल के सामने पराजित होकर अपना आरोप वापस ले लिया और उन्हें घर जाने को कहा। लेकिन नटखट बालगोपाल ने तब तक ऐसा करने से इनकार कर दिया जब तक कि गोपी उन्हें कुछ मक्खन न चखाये। उनकी माँग पूरी करने के लिए गोपी तैयार हो गई इस शर्त पर कि वह उनकी कर-ताल पर नाचें। कृष्ण नाचने लगे। इसी बीच यशोदा अपने खोये हुए बालक के लिए यमुना-तट पर बेचैनी से तलाश कर रही थीं। एक राह चलते व्यक्ति से उन्हें गोपी के घर में कृष्ण के घुसने तथा उनकी कारगुज़ारियों का पता चला। यशोदा ने वहाँ कृष्ण को गोपियों से घिरा पाया। अपनी माँ को देखकर कृष्ण ने भोली सूरत बना ली, और उनमें गोपियों की शिकायत की जो उन्हें माखन-चोरी के मामले में ज़बरदस्ती उलझा रही थीं। अपने अंधे मातृ प्रेम के कारण यशोदा ने वास्तविक स्थिति के विवरण में न जाते हुए गोपियों को ही दोषी ठहराया, ख़ूब डाँटने-फटकारने के बाद बेचारी गोपियों को दूर भगाया और अपने बेटे को घर वापस ले आईं।

तीसरा नाटक **पिपंरा गुचुवा** भी कृष्ण द्वारा माखन-चोरी की वैसी ही घटना से संबंधित है जिसमें रँगे हाथ पकड़े जाने पर कृष्ण चतुर उपायों से बाहर निकल आते हैं। पिछले नाटक की भांति यह भी **लीलाशुक बिल्वमंगल** के एक पद पर आधारित है जो नाटिका में नंदीश्लोक के रूप में प्रयोग किया गया है।[17] पद में वर्णित घटना को संवाद, गीत तथा जीवंत स्थितियों का समावेश करके नाटिका में विस्तार दिया गया है।

चौथे नाटक **भूमि-लेटोवा** में बालक कृष्ण को चोरी से दूध पीते और ताज़ा माखन खाते चित्रित किया गया है। अपनी माँ को पास आते देखकर वे अपनी बाँसुरी छुपाने के बाद ज़मीन पर लोटते हुए रुदन करने लगते हैं। नक़ली आँसू

---

[17] परिशिष्ट में इस नाटिका का अनुवाद देखें।

अपने गालों से ढरकाते हुए वे शिकायत करते हैं कि किसी ने उनकी बाँसुरी चुरा ली है, उनका दूध और माखन भी ले गया। उनको शांत करने के लिए यशोदा उन्हें फिर से दूध और माखन, और एक नई बाँसुरी भी देने का वादा करती हैं। वादे की ये चीजें न मिल जाने तक वे संतुष्ट नहीं होते। इसके बाद वे अपनी माँ को मुदित करते हुए नाचने लगते हैं। यह नाटक 'लीलाशुक बिल्वमंगल' के एक पद पर आधारित है।[18]

तीसरी विवादमुक्त नाटिका **भोजन-विहार** है। इसका कथानक भागवत-पुराण (X, 12) के एक कांड पर आधारित है। लेकिन नाटककार ने मूल रूप में कुछ परिमार्जन किया है। एक दिन सुबह अन्य ग्वाल बालों के साथ कृष्ण हमेशा की भाँति गायों का झुंड लिए वृंदावन पहुँचे। यमुना के किनारे आने पर कृष्ण ने नदी के रेतीले पाट पर वनभोज का उत्सव मनाने का फैसला किया। कृष्ण के चारों ओर घेरा बनाकर जब वे दोपहर के भोजन के लिए तैयार ही थे कि गायें भटक गईं। कृष्ण उनकी खोज में गये किंतु कहीं उन्हें पा नहीं सके। वे वन-भोजन के स्थान पर आये लेकिन इस बीच उनके साथी भी कहीं लापता हो गये थे। गायों और ग्वाल बालों को ब्रह्मा हर ले गये थे। इस स्थल पर ही नाटक का अचानक अंत होता है लेकिन इसका क्रम माधवदेव के ही नाम से जुड़ी एक अन्य नाटिका **ब्रह्मा-मोहन** में जारी रहता है। इस नाटिका में कोई नंदी श्लोक नहीं है और इसमें **भोजन-विहार** के कुछ गीतों की पुनरावृत्ति भी है। नाटिका में निरूपित किया गया है कि कृष्ण ने ब्रह्मा को रिझाते और उलझाते हुए किस प्रकार ग्वाल बालों को वापस पाया, जिनका कृष्ण की अस्थायी अनुपस्थिति का लाभ लेते हुए ब्रह्मा ने हरण कर लिया था। संस्कृत पदों की अनुपस्थिति, पूर्ववर्ती नाटिका के ही गीतों की पुनरावृत्ति और माधव की कुशल छाप का अभाव इसके लेखक के बारे में संदेह की संभावना छोड़ते हैं। इसी प्रकार **भूषण-हरण, रास-झुमुरा** और **कटोरा-खेला**, जिनमें या तो कृष्ण की प्रेमिका के रूप में या एक पूर्ण युवती गोपी के रूप में राधिका प्रमुख भूमिका निभाती है। कुछ समीक्षकों द्वारा माधवदेव की नाट्य-प्रतिभा के परिणाम नहीं माने जाते क्योंकि न तो **महापुरुषीय वैष्णव मत** के धार्मिक ढाँचे में और न शंकरदेव तथा माधवदेव की वास्तविक रचनाओं में कहीं राधा को कोई स्थान दिया गया है। राधा या तो कृष्ण की प्रेमिका के रूप में या कृष्ण की शक्ति के साक्षात्कार के रूप में आती

---

[18] नीतम् नव नवनीतम् केन च पीतम् पयः क्व मे मुरली।
समुदीर्य लुंठितिअंतम् भूमौ बालम् नमामि गोपालम्॥

(मेरा नया बिलोया हुआ माखन कौन ले गया है और किसने मेरा दूध पिया है ? मेरी बाँसुरी कहाँ है ? मैं उस बाल गोपाल के चरणों में नमन करता हूँ जो इस प्रकार धरती पर लोटते हुए विलाप कर रहे थे।)

हैं। और फिर इन नाटकों का सामान्य संघटन माधव के वास्तविक नाटकों से संगति में नहीं है।[19]

नाटककार रूप में माधवदेव की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जो उन्हें आरंभिक असमिया नाट्यसाहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट व्यक्तित्व बनाती हैं। शंकरदेव के ही सामान्य ढाँचे का अनुसरण करने के बावजूद विषयवस्तु के चयन तथा उपचार की दृष्टि से वे बहुत परे गये। उनके कथानक अधिकांशतः विशेष प्रसंगों एवं स्थितियों से जुड़े हैं और उनके नायक उत्फुल्ल, चतुर, नटखट तथा प्यारे बालक कृष्ण ही हैं। एक सहज विनोद एवं परिहास का पुट इन नाटकों को समृद्ध करता है, जिसके बीच-बीच में तीनों लोकों के स्वामी के अत्यंत मानवोचित व्यवहार से उठनेवाली आश्चर्य-भावना भी मिलती है।

अपनी नाटिकाओं के केंद्रीय तत्त्वों के समायोजन के यिए माधवदेव **लीला-शुक-बिल्वमंगल** के विशेष ऋणी हैं। अपने पाँच नाटकों में उन्होंने नाट्य अंतर्वस्तु के रूप में बिल्वमंगल के दसेक पदों का प्रयोग किया है। आजीवन ब्रह्मचारी बने रहनेवाले माधव अवचेतन रूप से वत्सल प्रेम के लिए लालायित रहे होंगे जो अपने उदात्तीकरण के फलस्वरूप कृष्ण तथा यशोदा के बीच वात्सल्य-संबंध के चित्रण में अभिव्यक्ति पाता है। इस संबंध में उल्लेख किया जाना चाहिए कि सोलहवीं सदी के वैष्णव नाटक अपने गीत्यात्मक आकर्षण में ही समृद्ध नहीं हैं बल्कि गद्य-संवादों के प्रयोग की दृष्टि से भी उतने ही विशिष्ट हैं। अल्प विस्तार के बावजूद माधवदेव के नाटक शंकरदेव के नाटकों का गीति-गुण बनाये रखते हैं और मुख्य चरित्र कृष्ण को उनकी दैवी विशेषताओं से वंचित किये बिना एक प्रिय शिशु के रूप में चित्रित करते हैं।

---

[19] इन विवादास्पद नाटकों का संक्षिप्त सारांश परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।

7

गीति-आवेग

माधवदेव की गीति-रचनाएँ न केवल परंपरावादी वैष्णव-मंडलियों में बड़ा सम्मान पाती हैं, बल्कि समूचे असम समाज पर उनका सशक्त प्रभाव है। वैष्णव परंपरा के अनुसार, अपने गुरु शंकरदेव का अनुसरण करते हुए माधवदेव ने शास्त्रीय रागों के अनुरूप 191 भक्ति-गीतों की रचना की, जिसमें से 150 के आसपास आज हमें उपलब्ध हैं। यदि उनके नाटकों के अंतर्गत गीतों को उपरोक्त संख्या से जोड़ दिया जाय तो सारे गीतों की संख्या एक सौ अस्सी हो जाती है। पहले भी यह बताया जा चुका है कि अपने गीति-सौंदर्य, वैचारिक औदात्य एवं भक्ति की सच्चाई के कारण शंकरदेव तथा माधवदेव के भक्ति-गीत **बड़गीत** अथवा उदात्त गीत कहलाते हैं।[20] नाटकों की भाँति, गीतों की भाषा भी ब्रजबुलि है। मैथिली रूपों तथा अभिव्यक्तियों के अपनी भाषाओं से मिले-जुले इस भाषारूप को पूर्व भारत के वैष्णव कवि अपने भक्ति-गीतों में सामान्य रूप से प्रयोग करते थे। कभी-कभी इसमें भोजपुरी, ब्रजभाषा और अवधी रूपों की भी बानगी मिलती है। शंकरदेव तथा माधवदेव ने अपने **बड़-गीतों, भतिमाओं** (देवताओं तथा सामान्य जनों की स्तुति के पदों) तथा भक्ति नाटकों के लिए ब्रजबुलि का प्रयोग किया। **बड़गीत** शृंगार-रस से मुक्त हैं जो कि गौड़ीय मत के वैष्णव गीतकारों तथा मिथिला के सुविख्यात गीतिकाव्यकार विद्यापति की एक प्रधान विषयवस्तु है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि या

---

[20]श्री श्रीमाधवदेवार वाक्यामृत, (संपादक : पी. सी. गोस्वामी, प्रकाशक : ज्योति प्रकाश, गोहाटी, 1959) में माधवदेव के 181 गीत मिलते हैं। इनमें नाटकों के गीत भी शामिल हैं।

तो कृष्ण की प्रेयसी के रूप में या उनकी आह्लादिनी शक्ति के मूर्त रूप में राधा का असमिया वैष्णव साहित्य में कोई स्थान नहीं है। इसीलिए विद्यापति तथा बंगाल के वैष्णव कवियों द्वारा उत्साहपूर्वक चित्रित राधा-कृष्ण के बीच मधुर भाव को असम के वैष्णव कवियों ने स्वभावत: बहुत महत्त्व नहीं दिया। यह सच है कि कुछ **बड़गीत** रचनाओं में गोपियों तथा कृष्ण के बीच वियोग (विप्रलंभ) का वह चित्र भी मिलता है, जब कृष्ण वृंदावन छोड़कर मथुरा चले गये थे। शंकरदेव तथा माधवदेव समेत असमिया वैष्णव गीतकार **दास्य** तथा **वात्सल्य** भावों के माध्यम से ईश्वर के प्रति समर्पण एवं सामीप्य बोध की अभिव्यक्ति में ही आनंदित होते हैं। जबकि शंकर ने ईश्वर के प्रति दास्य भाव की अभिव्यक्ति का उच्च स्तर प्राप्त किया, माधव ने कृष्ण की बाल लीलाओं व किशोर क्रीड़ाओं तथा नंद-यशोदा के साथ उनके वत्सल-संबंध के चित्रण को ही श्रेयस्कर समझा। असम के वैष्णव **बड़गीतों** में छ: रसों की उपस्थिति मानते हैं : **लीला** (विष्णु तथा उनके अवतारों, मुख्यत: कृष्ण की दिव्य क्रीड़ाएँ), **विरह** (यशोदा एवं गोपियों के हृदय में कृष्ण-वियोग की व्यथा), **विरक्ति** (सांसारिक प्रयोजनों के प्रति उदासीनता), **चौर** (कृष्ण द्वारा दूध-माखन-चोरी की लीला), **चातुरी** (कृष्ण का चतुरतापूर्ण एवं नटखट व्यवहार), **परमार्थ** (परम ज्ञान)। लीला-गीतों का चार श्रेणियों में उपविभाजन किया गया है : **जागन** (प्रात: वेला में नींद से उठने की क्रिया, **चलन** (गायों तथा ग्वालवालों के साथ वृंदावन की ओर प्रयाण), **खेलन** (वनस्थलीय खेल) तथा **नृत्य**।

अब हम माधवदेव की रचनाओं के प्रकाश में उपरोक्त विविध प्रकार के गीतों की चर्चा करेंगे। शिशु रूप में परम प्रभु की लीला एवं कर्म से संबंधित गीतों के उदाहरण **जागन**, **चलन**, **खेलन** तथा **नृत्य** गीत हैं। उनका आरंभ प्रात:वेला में कृष्ण को नींद से जगाने के लिए प्रयोग किये गये यशोदा के मीठे वचनों से होता है। एक उद्बोधन गीत में यशोदा कृष्ण को इस प्रकार संबोधित करती हैं।[21]

> हे कमला के सहचर, अब अपनी नींद से उठो। हे गोविन्द, मुझे अपना मुँह दिखाओ। रात बीत चुकी, दिशाएँ प्रकाशित हो चुकी और सूरज की किरणें अंधेरे को चीरकर निकल आई हैं। शतदल कमल पूरी तरह खिल चुके हैं और उनके ऊपर भौंरे मंडरा रहे हैं। ब्रज की गोपियाँ तुम्हारी महिमा गाते हुए दूध मथ रही हैं। दाम और सुदाम तुम्हें बुला रहे हैं और देखो, बलराम भी शयन घर से निकल आये हैं। नंद गोशाले

[21] इस पुस्तक में अनूदित गीतों के मूल रूप देवनागरी लिपि में परिशिष्ट के अंतर्गत दिये गये हैं।

की ओर गये हैं और ग्वाले मवेशियों की ओर। इसलिए हे गोपाल, गायों की रखवाली के लिए उठो। दूध और मक्खन की पोटली तथा तुरही, लकुटी और बाँसुरी लेकर बछड़ों तथा गायों को वनों में जल्दी छोड़ आओ। माधव कहते हैं : हे जननी, तीनों लोकों के स्वामी को गोपाल रूप में पाने के लिए तुमने कौन-सा तप किया था ?" (II)

माधवदेव के इस प्रकार के गीतों में गौशाले के प्रातःकालीन दृश्य, जननी द्वारा मनुहार तथा उनके लाड़ले बेटे द्वारा हटपूर्ण स्वांग का सुस्पष्ट चित्रण किया गया है।

कृष्ण सवेरे-सवेरे अपने ग्वाल-सखाओं के साथ गायों को हाँकते हुए कालिन्दी के किनारे वृंदावन के चारागाहों की ओर जाते हैं। वे भात, दूध-दही-मक्खन एवं खाने की अन्य चीज़ों की पोटली कंधे पर लटकाये नाचते-गाते आगे बढ़ते हैं। वृंदावन की ओर प्रस्थान की तैयारी का वर्णन करनेवाले गीतों की मुख्य वस्तु माधव के इस नीचे लिखे गीत में एक सुंदर अभिव्यक्ति पाती है :

गायों का झुंड साथ लिये और बाँसुरी बजाते श्याम कानु (कृष्ण) सवेरे ही वृंदावन की ओर चल पड़ते हैं। एक गोपाल बालक की वेशभूषा में सजे समूचे संसार के गुरु हरि के आगे-पीछे ग्वाल-बालों से घिरे हुए बढ़ते हैं। कंधे पर रखी लकुटिया से भात, दही और दूध की पोटली लटकाये तथा सिर पर पगड़ी बाँधे संसार के स्वामी अपनी दिनचर्या के लिए तैयार हो गये हैं। उनके बाँयें भाग में रेशमी उत्तरीय लहरा रहा है। वे तुरही और लकुटी साथ में लिए हुए हैं। राग रंग और ठिठोली में सरल भाव से रमते हुए वे आगे बढ़ते हैं। गायों तथा बछड़ों के समूह को हाँकते सैकड़ों ग्वाल-बालों द्वारा बजायी जाने वाली तुरही, शंख और बाँसुरी की आवाज़ सारे आकाश में गुंजा रही है। अनेक खेल विविध रीतियों से खेलते हुए वे आगे बढ़ते हैं। उनके विविध राग रंग और नटखट व्यवहार सारे विश्व को लुभाते हैं। वैकुंठ के स्वामी, विश्व के प्रभु, वन में गायों की रखवाली में लगे हैं। माधव कहते हैं कि कानु (कृष्ण) की चरण-रज ही उनकी अंतिम शरण है।

विभिन्न स्थितियों और मनोदशाओं में कृष्ण के बढ़ते जाते सौंदर्य के वर्णन से कवि कभी थकता नहीं, बल्कि उसमें अधिकाधिक आनंद लेता है। **खेलन** तथा **नृत्य** गीत यमुना के रेतीले पाट पर और पास के वनों में ग्वालबालों के साथ कृष्ण की क्रीड़ाओं तथा राग-रंग का विशद चित्र प्रस्तुत करते हैं। वे प्रायः कृष्ण को मक्खन और मिष्ठान्न के लिए गोपियों के कर-ताल पर नाचते पाते हैं। एक गीत का निम्नांकित भावानुवाद इस प्रकार की रचनाओं की एक झलक देगा :

श्यामवर्णी कृष्ण सहज क्रीड़ा में लीन हैं। उनकी आकर्षक क्रीड़ा समूचे विश्व को सम्मोहित करती है। उनके रक्ताभ चरण नृत्य में ताल के अनुसार चलते हैं और इसके साथ उनके पैरों में बँधे नूपुर रुनझुन बजने लगते हैं। उनको घेरे में लिये ग्वालबालों की नियमित तालियों पर कानु (कृष्ण) झूमते हुए नाचते हैं। उनका चंदन-चर्चित शरीर बल खाता लहराता है। उनके वक्ष पर कदंब फूलों का हार सुशोभित है। उनके गले में मोतियों की एक माला लटक रही है और कमर से पीतांबर बँधा है। एक हाथ में वे सुनहरी बाँसुरी लिए हुए हैं। एक मोरपंख उनके मुकुट की शोभा बढ़ा रहा है। उनके पीतांबर का खुला हुआ सिरा हवा में उड़ रहा है। ग्वाल सखाओं की ओर देखते हुए वे बार-बार मुस्कराते हैं। उनकी दंत-पक्तियों में मोतियों से भी अधिक चमक है और उनके श्यामवर्ण की आभा आस-पास के क्षेत्र को ज्योतित करती है। अपनी बंकिम दृष्टि से वे अमृत की वर्षा करते हैं। माधव का मन गोपाल के ऐसे सुखकर स्वरूप में सदा रमा रहे! (III)

माधव के बाल-गोपाल एक ऐसे अकालपरिपक्व बालक हैं, जो एक माँ की एक मात्र संतान होने का लाभ अनेक युक्तियों का प्रयोग करके लेना जानते हैं। अपना हठ पूरा न होने पर वे अपनी माँ से रूठते और क्रुद्ध भी होते हैं और कभी-कभी अपनी इच्छा की चीज़ पाने के लिए किसी भी बच्चे की भाँति आँसू बहाने लगते हैं। वे अक्सर चोरी-छुपे गोपियों के घरों में मिष्ठान्न एवं मक्खन खाने या चुराने के लिए घुस जाते हैं और रँगे-हाथ पकड़े जाने पर उस विषम स्थिति से अपने को चतुराई से निकाल जाते हैं। किंतु कभी-कभी अपने नटखटपन के लिए माँ की डाँट-फटकार से वे बच नहीं पाते। निम्न गीत उनके नटखटपन को ही उभारता है, यद्यपि कवि ने उनके दिव्य शिशु होने पर बार-बार ज़ोर दिया है:

"सुनो, हे गोपी" गोपाल कहते हैं, "तुम्हारे बेटे ने मेरे शरीर पर धूल फेंक दी है। मैंने किसी का जी दुखाने के लिए कभी कोई दुर्वचन नहीं कहा। जब कभी मैं कोई खाने की चीज़ पाता हूँ, उसे मैं मित्रों में बाँट कर लेता हूँ। मैं अनुग्रहपूर्वक या भीख में मिला दही-दूध लाता हूँ और तुम्हारा बेटा भी इसका एक भाग पाता है। इसके बावजूद तुम्हारे बेटे ने मेरे शरीर पर धूल फेंकी है। मैं तुम्हारे बेटे को अपनी माँ के पास ले जाऊँगा। दूसरे के दोष के लिए भला मेरी प्रताड़ना क्यों हो? मेरी माँ का तेवर तुम अच्छी तरह जानती हो"। इतना सुनकर गोपी कृष्ण के प्रति सहानुभूति से भर गयी, उसने उनके शरीर से धूल साफ़ की और प्यार भरे शब्दों से सांत्वना दी। उन्हें भरपूर दूध, दही और मक्खन

मिला, जिसे उन्होंने जी भरकर खाया। माधव कहते हैं—हरि की चातुरी इस प्रकार परिलक्षित होती है।

पड़ोसी ग्वालिनों द्वारा कृष्ण की शरारतों के बारे में बारंबार उलाहने से तंग आकर यशोदा कभी-कभी उन्हें प्रताड़ना की धमकी देती हैं। तब कृष्ण भी यह धमकी देते हैं कि वे मथुरा चले जायेंगे और कभी वापस नहीं आयेंगे, अपनी बेचारी माँ को चुप कर देते हैं। कभी-कभी वे वृंदावन में गायों की रखवाली में कठिनाई की शिकायत माँ से करते हैं तब यशोदा मीठे शब्दों से उन्हें शांत करती हैं :

हरि यशोदा से कहते हैं : "मैं आज स्नान नहीं करूँगा। जब मैं वन में गायों को खोजते हुए भटक रहा था तब घास की नुकीली पत्तियों ने मेरा समूचा शरीर बींध दिया है। स्नान करने पर इन खरोंचों में जलन आ जायेगी। माँ, सुनो मैं आज बिना कुछ खाये ही सोने चला जाऊँगा।" भोली-भाली माँ इन शब्दों से इतनी प्रभावित हुई कि उसके गालों पर आँसू ढरकने लगे। उसने कहा, "मैं भी कैसी अभागन माँ हूँ। मत रो बेटे, रो नहीं। स्नान कर लो। मैं तुम्हारे शरीर पर ताज़ा मक्खन मल दूँगी और शीतल जल में नहलाऊँगी जिससे तुम्हें कष्ट नहीं होगा। इस स्नान के बाद तुम अमृत की तरह स्वादिष्ट भोजन करोगे।" माधव कहते हैं, हे हरि, यह बात मुझे उलझन में डाल देती है : ब्रह्म के अवतार को भी खरोंच कैसे पड़ सकती है ? (V)

एक अन्य गीत में कृष्ण शिकायत करते हैं :

'माँ यशोदा, आज मैं बहुत भूखा हूँ। जो मक्खन तुमने दिया था वह मैंने खाया ही नहीं, इसीलिए मैं इतना कमज़ोर और कांतिहीन हो गया हूँ। मैं सवेरे से खेलता रहा हूँ और मैंने कुछ भी नहीं खाया है। माँ, तुमने मुझे अब भी पुकारा नहीं, मैं भूख के कारण कमज़ोरी का अनुभव कर रहा हूँ।' यह कहते हुए कृष्ण अपने हाथों से पेट थाम लेते हैं। अपने पुत्र को कष्ट में देख कर माँ के गालों पर आँसू ढरकने लगते हैं। बार-बार 'मेरे प्यारे बेटे' कहते हुए यशोदा कृष्ण के साँवले शरीर पर पड़ी धूल अपने आँचल से साफ़ करती हैं। दुलार के साथ उन्हें गोद में लेते हुए वे दूध पिलाने लगती हैं। जो स्वयं संतोष, समस्त आनंद और सुख स्वरूप है, वह यशोदा के स्तनों से शिशुरूप में दूध पीते हुए आनंदित होता है—दीन माधव यह गीत गाता है। (VI)

विरह गीतों की विषयवस्तु कृष्ण के वृंदावन से मथुरा गमन की है। इनमें गोपियों की वियोग-व्यथा का चित्रण है। जब कृष्ण के दूत उद्धव अपने स्वामी के निर्देश पर वृंदावन जाते हैं तब गोपियाँ, जिनको कृष्ण अपने परिजनों से भी

अधिक प्रिय थे, कृष्ण से बिछुड़ने की सघन अनुभूति को अभिव्यक्ति देती हैं। वियोगिनी गोपियों का चित्रण करनेवाले वैसे पाँच गीतों की रचना का श्रेय माधव को जाता है। ऐसे ही एक गीत की अंतर्वस्तु नीचे दी जाती है :

> "गोपाल के बिना गोकुल में अंधेरा छा गया है, इसका सूर्य, मुरारि, तो दूर चला गया है। हमारा जीवन गोविंद हमसे दूर चला गया है, हम उसके चरण-कमल फिर नहीं देख पायेंगी। सूर्य के बिना दिवस या पानी के बिना मछली की भाँति, कृष्ण के बिना गोपियों का जीवन भी दयनीय हो गया है", गोपियाँ धरती पर लोटती हुई इस प्रकार विलाप करती हैं। माधव कहते हैं, नंद-नंदन ही मेरी अंतिम शरण है।

मानव जीवन की क्षणभंगुरता, वासनाओं की व्यर्थता, विश्व की मायावी प्रकृति, पार्थिव वस्तुओं के प्रति उदासीनता का भाव बनाने की वांछनीयता, हरि-चरणों में संपूर्ण समर्पण का परमानंद तथा अन्य ऐसे ही विचार माधव के गीतों में रचे-बसे हैं। पारंपरिक वैष्णव मंडलियों में इनको **परमार्थ** एवं **विरक्ति** के गीत कहा जाता है। **दास्य** इन गीतों का स्थायी **भाव** है किंतु कृष्ण की बाल लीलाओं तथा नटखट व्यवहार से संबंधित गीतों में **वात्सल्य भाव** की प्रधानता है। इन गीतों की तुलना सूरदास के कुछेक पदों से की जा सकती है। इन पदों की प्रमुख विशेषता है, भक्तों पर कृपा दिखाने के लिए परमात्मा के गोपालरूप धारण करने पर आश्चर्य-भाव की अभिव्यक्ति। विश्व की क्षणभंगुर एवं मायावी प्रकृति तथा सांसारिक सुखों के प्रति वितृष्णा अथवा उदासीनता के भाव को व्यक्त करनेवाले दो गीत नीचे उद्धृत हैं :

> हे हरि, मुझ जैसे पापी की रक्षा कैसे होगी, जब तक कि तुम मुझ पर अपनी कृपा न करो ? पापी मन सांसारिक इच्छाओं का त्याग नहीं कर पाता : इस नारकीय संसार में मैं आकंठ डूब चुका हूँ।
>
> आँखे नारी-सौंदर्य से परे नहीं जातीं और न जीभ छः रसों के स्वाद से विमुख होती है। कान संगीत की मधुर ध्वनि से बच नहीं पाता और न चर्म सुखद स्पर्श से विरक्त होता है। नासिका सुगंध का निषेध नहीं कर पाती और मन सदा सोने तथा सुन्दर नारियों के पीछे चंचल बना रहता है। लोभ, काम, क्रोध, मद, छल कभी मुझे छोड़ते नहीं। ईर्ष्या, मालिन्य इत्यादि एक क्षण के लिए भी दूर नहीं जाते। दैत्य रूपी काल ने मुझे अपने पंजे में ले लिया है और मेरे शरीर को तिल-तिलकर खत्म करता जा रहा है। हे प्रभु, मैं लगभग अशक्त हो चुका हूँ और तुम्हारे चरणों में शरण लेने के अतिरिक्त मेरी अन्य कोई गति नहीं है। इस प्रकार **मूरख माधव** विलाप करता है। (VIII)

हे हरि, तुम्हारे चरणों में शरण मैं कैसे पा सकता हूँ ? कृपा करके इस दुःख सागर से मेरा मोचन करो ।
विश्व रूपी इस सघन वन में व्याध रूपी काल मृग रूपी आत्माओं को मारने की तैयारी करता है। मैं माया द्वारा फेंके गये जाल में आबद्ध प्राणी हूँ। इससे निकलने की कोई विधि मुझे मिलती नहीं । वासना एवं क्रोध रूपी भयानक कुत्ते मुझे हर क्षण काटने को दौड़ते हैं और सांसारिकता के विष से उपजी आत्यंतिक पीड़ा के कारण मेरे प्राण छूटने ही वाले हैं। पाँचों इंद्रियाँ पाँच तीरों की तरह हैं जो मेरे हृदय को बींध रही हैं। पाप और पुण्य मेरे गले में फाँस की तरह पड़े हैं। एक व्याघ की तरह काल मुझे घसीट रहा है। हे धनुर्धर, मेरी रक्षा करो। तुम्हीं काल के स्रष्टा और स्वामी हो। महिमा में तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं। यह जानकर ही मैं तुम्हारे चरणों की शरण आया हू **दीन माधव** इस प्रकार गाता है। (IX)

विश्व की छवि एवं कृष्ण का सौंदर्य सँजोने के लिए माधवदेव ने न केवल सभी प्रचलित बिंब विधानों का भरपूर प्रयोग किया है, बल्कि स्वयं अपनी कल्पना-शक्ति का प्रभावशाली उदाहरण छोड़ा है। विश्व की तुलना कभी उत्ताल तरंगों वाले सागर से की गयी है, जिसमें घड़ियाल तथा तिमिंगल जैसे भयानक जंतुओं का वास है, कभी उसकी तुलना एक बीहड़ वन से की गई है जिसमें खूंखार शिकारी कुत्तों को साथ लेकर चलनेवाले आदिम व्याध रहते हैं और कभी-कभी इसकी तुलना वेगवती नदी से की गई है, जिसमें जीव एक बेड़े की भाँति तिरा करता है। कृष्ण का नाम एक अनुकूल बयार है और गुरु बेड़ा चलाने वाले (नाविक) हैं जो उसे सुरक्षित स्थल तक पहुँचाते हैं। बालक कृष्ण के लावण्य तथा आकर्षण का वर्णन अनेक पदों मे, पारंपरिक एवं मौलिक दोनों ही प्रकार के बहुविध बिम्ब विधानों के साथ किया गया है। एक पद में वे कहते हैं :

"सभी गोपियों के प्रेम के पुंजीभूत रूप कनाई (कृष्ण) के सौंदर्य के लिए सटीक रूपक देने का सामर्थ्य किसमें है ? हर कोई कहता है कनाई (कृष्ण) श्यामवर्ण हैं, लेकिन यह तो सुधारस ही है जिसने श्याम छाया ले ली है। सौंदर्य में कानु (कृष्ण) के समतुल्य प्रतिदर्श पाने में सृष्टि-कर्ता भी सफल नहीं हुआ, कानु स्वयं ही अपना प्रतिदर्श हैं।"

अपने पदों में व्यक्त विचारों को स्पष्ट करने के लिए माधवदेव ने कृषि, व्यापार अथवा वाणिज्य क्षेत्रों से भी सादृश्य प्रयोग मे लाये हैं। माधवदेव के

पद इस प्रकार अपने उदात्त विचार, साहित्यिक सौंदर्य तथा हृदयहारी संगीत के साथ पिछली चार शताब्दियों से असम के धार्मिक जीवन के अंश और व्यथित हृदयों के लिए सांत्वना के स्रोत बन चुके हैं। ये पद न केवल आध्यात्मिक रूप से आकुल हृदयों के लिए सांत्वना के स्रोत बने, बल्कि जन समुदाय को वैष्णव संप्रदाय की ओर मोड़नेवाले सशक्त कारक भी सिद्ध हुए।

8

उपसंहार

एक धार्मिक सुधारक, समर्पित भक्त और असाधारण क्षमतावान कवि एवं विद्वान के अतिरिक्त माधवदेव एक गहन मानवीय सहानुभूति एवं विनयभाव वाले उल्लेखनीय व्यक्तित्व थे। अपनी कुल-परंपरा में रमनेवाले एवं उच्च जन्म एवं जाति की गर्व से घोषणा करनेवाले अनेक समकालीनों से भिन्न माधव ने अपनी वंशावली का कोई संकेत नहीं दिया है। वे हमेशा अपने को 'दीन माधव' अथवा 'मुरुख माधव' कह कर संतुष्ट रहते हैं। उन्होंने विवाद नहीं किया, ताकि पारिवारिक जीवन उनके आध्यात्मिक पथप्रदर्शक की सेवा और अपने आध्यात्मिक आदर्शों की पूर्ति में बाधक न बन जाय। मध्यकालीन जीवनचरितों में यह उल्लेख मिलता है कि वे हमेशा शंकरदेव के समीप रहे और गुरु का आदेश मिलने पर ही वे अपने घर गये। जब तक वे आश्वस्त नहीं हो जाते थे कि गुरु गहन-निद्रा में निमग्न हो चुके हैं, तब तक उनका चरण-सेवन उनका नियमित व्यवहार था। जीवनकथा पुस्तकों में यह भी उल्लेख मिलता है कि कैसे वे उन अस्वस्थ भक्तों की सेवा-सुश्रूषा के लिए आगे आते थे जिनकी अन्य लोग उपेक्षा कर देते थे। मध्यकालीन जीवनियों, विशेषकर **कथागुरुचरित** में अपने गुरु की दैनंदिन सुख-सुविधा की माधव द्वारा देखरेख के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं जबकि अपने आध्यात्मिक पथप्रदर्शक की इच्छापूर्ति के लिए वे अपने को भयावह स्थितियों में भी डाल देते थे।

संत माधवदेव की विनयशीलता एवं अपने अनुयायियों के साथ उनके समरूप व्यवहार का बखान अनेक जीवनचरितों में मिलता है। एक ऐसा उदाहरण भी है, जिसमें वे अपने आपको सबसे विनम्र व्यक्तियों से भी विनम्र रूप में रखते हैं। एक दिन माधव की परीक्षा के लिए शंकरदेव ने उनको एक नरपशु लाने के

लिए कहा। अपने गुरु के आदेश के अर्थ के बारे में सोचते हुए माधव उस रात सो नहीं सके। सवेरा होने पर वे हमेशा की भाँति गुरु के पास गये और समुचित विनयशीलता के साथ स्वयं को नरपशु के रूप में पेश किया और कहा :

> "मैं सारी रात इस सवाल पर सोचता रहा कि वह नरपशु कौन हो सकता है जिसके लिए आपने आदेश किया था। गहन विचार के बाद मैंने पाया कि मुझसे अधिक पापाचारी तो और कोई नहीं हो सकता। मैं स्वयं को वह नरपशु मानता हूँ जिसको लाने के लिए आपने कहा था।"

माधव की विनयशीलता से शंकरदेव बहुत प्रसन्न हुए। एक अन्य अवसर पर कोचनरेश लक्ष्मीनारायण की माँ ने माधव के अनुगामियों के उपयोग हेतु, उनके स्तर के अनुसार उनमें भेद करते हुए, उपहार भेजे। माधव ने सभी उपहार वापस कर दिये। अपने सभी अनुयायियों को वे समान मानते थे, उपासकों में कोई ऊँचा या नीचा पद नहीं देखते थे। जीवन-कथाओं में साथी उपासकों के लिए उनके त्याग का ज्वलंत उदाहरण मिलता है। जब शंकरदेव ने अपने परिजनों तथा अनुगामियों के साथ अहोम भूक्षेत्र से कोच राज्य की ओर प्रस्थान किया था, तब माधवदेव ने अपना सारा सामान नाव से बाहर फेंक दिया था ताकि दो अन्य उपासक नाव में आ सकें जो संचार-साधन के अभाव में छूट गये होते। अट्ठाइस साल तक एक धार्मिक समुदाय का प्रमुख होने के बावजूद वे एक दीन-हीन जीवन जीते रहे। अनावश्यक तड़क-भड़क से वे बचते थे और आडंबरपूर्ण एवं भोगविलासमय जीवन में आस्था नहीं रखते थे। अपने अनुयायियों को भी उन्होंने इनसे बचने का सुझाव दिया।

महापुरुषिया वैष्णव संप्रदाय आज भी असम का एक प्रमुख जीवंत संप्रदाय है। इसकी जीवनीशक्ति एक बड़ी सीमा तक माधवदेव की संगठन-क्षमता, पूर्वाभास एवं अनुकरणीय आचरण के कारण है। यद्यपि यह नश्वर संसार उन्होंने लगभग चार सौ साल पहले छोड़ दिया था, असम के लाखों लाख नर-नारियों के मन-प्राण में वे आज भी जीवित हैं।

परिशिष्ट I

पृष्ठ 46-51 पर उद्धृत गीतों के मूल रूप देवनागरी लिपि में नीचे दिये गये हैं :

I

राग-श्याम

तेजरे कमलापति परभात निंद।
तेरी चांद मुख पेखो उठरे गोविंद॥ ध्रुव॥
रजनी विदूर दिशा धवलि वरण।
तिमिर फेरिया बाज रविर किरण॥
शतपत्र विकशित भ्रमर उड़इ।
ब्रजवधू दधि मथे तुवा गुण गाइ॥
दाम, सुदाम डाके तेरी लइया नाम।
हेरा देखा उठिया आसिला बलराम॥
नंद गइला बाथाने गोआला गइया पाल।
सुरभि चराइते लागे उठरे गोपाल॥
क्षीर लवनु लइयो शींगा बेटा वेणु।
सकाले मेलियो वत्स हांबालावे धेनु॥
कहय माधव-माइ, किनु तपसाइलि।
त्रिजगतपति हरि रखोवाल पाइलि॥

II

राग-श्याम

परभात अ शाम कानु वेनु लइया संगे।
वंशीर नि:श्रीने वृंदावने चले रंगे॥ ध्रुव॥
जगतर गुरु हरि काही गोप काछे।
आभीग बालक बेरधी चले आगे पाछे॥
शिका बांधी छांदी काँधे लइया दधि भात।
माथाये छाँदनी जदि साजे जगन्नाथ॥
वाम कासे शींगा बेटा नेतकर चेलि।
बहु रसे लासे वेशे करि चले केलि॥
असंख्य-सहस्र शिशु धेनु वत्सगण।
शींगा-शंख वेणुरवे पुरय गगन॥
नानान खेलन खेले बहु भावे गावे।
वैकुंठर पति प्रभु वने चरे धेनु।
कहय माधव गाति कानु पदरेणु॥

III

राग-भाटियाली

भाल कालिया कानु खेलना खेलाय।
खेलार माधुरी हरि! भुवन भुलाय॥ ध्रुव॥
लयलासे रंगे दुइ चरण चलाय।
रुणु-जुनु करिया नूपुर बाजे पाय॥
आभीर बालक बेरधी छपरी बजाय।
पाक फिरि फिरिया नाचय जदुराय॥
चंदने लेपित अंग डोलाय गोपाल।
उड़े झलमल केलि-कदंबक माल॥
गज-मुकुतार-हार गांधी गले लोले।
पिंधन नेतेरे धोती कटि बेढ़ि डोले॥

मोहन कनक वेणु उड़िया घरे हाटे।
मयूरेर चूड़ा झलमल करे माथे॥
नेतेरे आंचल खानि हालय वातासे।
सुहृद गोपेर मुख चाय चाय हासे॥
माणिक जिनिया जवले दुइ दंद हांति।
दिशा पास शोभे श्याम शरीरर कांति॥
बंकिम नयने छाया अमिया वरिषे।
माधवर मन रहु एरूप हरिषे॥

IV

राग-भाटियाली

आलो सुना गोवालेर जाया, भोलय गोपाले।
हामार गावे धूल दिला तोमार छवाले॥
कोनो काले कोनो हानि बोलो नाहि ताइ।
एकखानि वास्तु पाइले बांतिया खाओ माइ॥
मागिया आनो दधि-दुग्ध तारो बंता खाय।
तथापि तोमार छवाले धूल दिला गाय॥
तोमार छवाल लइया आमि मावर आगे याइबो।
परर दोषे केने आमि आपुनि मरण खाइबो॥
तुमि सब भाले जाना आमार मायेर कथा।
शुनिया गोपीर बर लागी गइला बेथा॥
धूला झारि झुरिया बुलिला प्रिय वाणी।
दधि-दुग्ध लवनु खाइबारा दिल आनी॥
बुंद करि आनदे भुंजिला पेट भरि।
कहय माधव—ओहि हरिरा चातुरि॥

V

राग-बादरी

यशोवाकु आगु बोलत हरि भाव।
आजु छिनान करब नाहि माव॥
फिरलो वने वने धेनु बिचारि।
तृणे काटल सव शरीर हामारि॥
स्नान करिते लागिये तथि नीर।
पोरब हामाकेरी सकल शरीर॥
काकु करिये बोलोहो, शूना माइ।
शूतिये रहब आज किछुवे ना खाइ॥
तनयकु वाणी शूनिये वरनारी।
प्रेम परशि नयने झुरे वारी॥
करतह स्नान, सूनह मेरी बाप।
दुखिनीक पुत्र करबि नहि ताप॥
कोमल लवनु माखबो गावे आनि।
करावोहो स्नान-सुशीतल पानि॥
पोरब नाहि जुरावब सब गाव।
स्नान करिया, अमृत अन्न खाव॥
माधव कह हरि! गोचर हामारि।
काटल कंटि ब्रह्म-शरीर तोहारि॥

VI

राग-माहुर

मेरे भाइ, ओहे जशोवा
आजु हामो बड़हि भुखारि।
ओ किछु लवनु हामाकु देलह
नाहि खावलो, सोहि रुखारि॥ ध्रु०॥

हामु विहानत खेड़ी खेलावत
आजु किछुवे नाहि खावतरि।
तुमहि हामाकु नाहि डाकला माइ
भुखहि वर दुख पावतरि॥
खलि उदरे हरि हाट निवेशिये
देखत बोलत वाणी॥
आपोन तनयकहो दु:ख देखिये माइ
नयने जुरावत पानी॥
पुत्र-पुत्र बुलि आंचोरे मोचल
श्याम शरीरक धूलि॥
मेरा बाप बुलि क्षीर पियावत
बाहु मेलि कीले तुलि॥
ओहि निजानंद सुखहि संपन्न
सो हरि मानुष भावतारि॥
जशोवाकु स्नान-पानहि संतोष।
दीन माधव गावतारि॥

VII

राग-श्री

गोकुल आजु गोपाल विने भयओ अंधियारि।
उगत सूर, दूर गयोरे मुरारि॥
हामारि जीवन दूर गयोरे गोविंद।
नयने ना देखो आर पद-अरविंद॥
रवि विने दिन नोहे, जल विन मीन।
हरि विने गोपीर जीवन भइला क्षीण॥
धरणि लुटिया गोपी फुकारे सघन।
कहय माधव, गति नंदेर-नंदन॥

VIII

राग-श्री

मइ पापी केमने तरिबो हरि ए
तुमि करुणा करा मोरे।
पापमति मन वासना न छाड़े
मजिलो संसार घोरे ॥ ध्रु० ॥
नयन कामिनी-रूप न छाड़य
रसना ए षड्-रस।
गीत-मधुर ध्वनि श्रवणे न छाड़य
चरमे सुख परशा ॥
सुगंध शीतल नासाये न छाड़य
कनक कामिनी मने।
लोभ-मोह-काम-क्रोध-मदमान
न छाड़े ए सर्व क्षणे ॥
ईरिषा-आसूय-हिंसा-पइशून्य
नगुचे ए तिले तिले ॥
तनुक बेढ़ी तिले तिले धरि
काल अजगरे गिले ॥
भइलो अचेतन, तोमार चरण
विने नाहि आन गति ॥
शीतल चरणे पाशिलो शरणे
माधव मुरुख मति ॥

IX

राग-तुर-भाटियाली

केमने पाइबो हरि चरण तोरे।
ए दुख सागरे उद्धारा मोरे ॥
अ भव-आतोब अरण्य माझे।
काल व्याधे मृग मारिते साजे ॥ ध्रु० ॥

हामु पशु माया-जालत बंदी।
नहि देखो हामु पलाइते संधि ॥
काम-क्रोध कुत्ता कामुरि खाइ।
विषय-विष लागि ए जीव जाइ ॥
रूप-रस आदि ए पंच वाणे।
हृदय माझे हामु फुटलो ताने ॥
पाप-पुण्य भइला अ वर दोर।
गलर माजे छांदी बाँधिला मोर ॥
काल-व्याधे धरि लइ जाइ तानि।
राखा राखा मोरे सारंगपाणि ॥
कालरो काल तुमि छाहेब हरि।
नाहि नाहि आरा तोमार सरि ॥
जानिया शरण तोमार पाय।
दीन माधव दासे ए रस गाय ॥

परिशिष्ट II

क्षेपक नाटकों के कथानक

वैष्णव-मंडलियों में पारंपरिक रूप से प्रचलित लेकिन क्षेपक रूप में माधव देव से जोड़ दिये गये नाटकों के कथानकों का सारांश नीचे दिया गया है :

1. **भूषण-हरण** : एक दिन जब राधा पानी लेने यमुना की ओर जा रही थीं, उन्होंने कृष्ण को एक कदंब-वृक्ष के नीचे गहरी नींद में सोये देखा। उसने सोये हुए कृष्ण के शरीर से आभूषण उतार लिये और फिर उनको जगाया। उसने उनके आभूषणों के बारे में पूछा तो वे कुछ बता नहीं पाये। राधा घर लौटी और आभूषण यशोदा को दे दिये। उसने बताया कि यदि वह आभूषणों को उतार न लेती तो कोई चोर सोये हुए बालक (कृष्ण) से उनको चुरा ले जाता। इसके बाद कृष्ण घर आये और आभूषणों के बारे में पूछने लगे। उन्होंने कहा कि एक गोपी ने उन्हें खाने के लिए कुछ मिष्ठान्न दिया था जिसके बाद वे चक्कर खाने के साथ लगभग अचेत हो गये। उन्होंने राधा पर चोरी का आरोप लगाया। राधा ने उन स्थितियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया, जिसमें उसने आभूषण उतारा था लेकिन चतुर कृष्ण ने अपनी वाक्चातुरी से उसे पराजित कर दिया। अंत में, यशोदा की डाँट-फटकार राधा को ही सुननी पड़ी।

2. **रास-भुमुरा** : यह कथानक **भगवत-पुराण** के **रास-क्रीड़ा** कांड पर आधारित है। शंकरदेव की इस नाट्य रचना गाथा का स्रोत यही प्रतीत होता है। यद्यपि भागवत-पुराण में राधा का उल्लेख नहीं मिलता, इस नाटक में उसका चित्रण कृष्ण की प्रेमिका के रूप में है। अपने को कृष्ण की प्रेमिका मानते हुए वह दर्प से भर उठी थी। कृष्ण ने उसे सबक़ सिखाने का निर्णय किया। उसने उसके प्रेमाकुल व्यवहार की उपेक्षा की और यह जताया कि चूँकि एक बार वे अन्य गोपियों को जंगल में पीछे छोड़कर राधा के साथ अकेले निकलते थे, इसलिए उसे यह नहीं सोच लेना चाहिए कि वह उनके सिर चढ़ सकती है।

अपनी मूर्खता का भान होते ही राधा उनके पैरों पर गिर पड़ी और अपनी ग़लती के लिए क्षमायाचना की। वे दोनों पुन: प्रेमपाल में बँध गये।

3. **कटोरा खेला** : कथानक का स्रोत अज्ञात है, लेकिन बंगाल के बुड़ो चंडीदास के कृष्ण-कीर्तन में वैसी ही घटनाओं का वर्णन मिलता है। माधव के दो वास्तविक **बडगीत** इसमें शामिल किये गये हैं।

एक दिन जब कृष्ण यमुना-तट पर अपने साथियों के साथ खेल रहे थे, कुछ गोपियों के साथ राधा यमुना बाज़ार की ओर आयीं। अपने साथियों की सहायता से कृष्ण ने उनको बीच में ही रोक लिया और उनके दही दूध एवं मक्खन के मटकों की छीनने की कोशिश की। कृष्ण को राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी बताते हुए उन्होंने गोपियों से चुंगी की माँग की। यह सुनकर गोपियाँ वापस मुड़ने लगीं और दूसरे घाट से नदी पार जाने का प्रयास किया। वहाँ भी कृष्ण और उनके साथियों ने वही माँग की। बचने की कोई सूरत न देख राधा और उनकी सखियाँ इस शर्त पर दूध मक्खन और मिष्ठान देने को राज़ी हुई कि वे सब नाचेंगे। फिर तो सभी ग्वाल बाल लगे और उन्हें पुरस्कार में मिष्ठान्न मिला वैसे इस नाटक का नाम असंगत ही है क्योंकि इसमें कटोरा-खेल (एक तरह की गेंद) का उल्लेख नहीं है।

इन तीनों में से किसी भी नाटक पर माधव के नाटकों की-सी दक्षता की छाप नहीं है। उनकी भाषा अनगढ़, विरस और रुक्ष हैं। है। माधव के नाटकों में मिलनेवाले सामान्य नांदी-श्लोक तथा मध्यवर्ती संस्कृत पद भी इसमें नहीं मिलते।

परिशिष्ट III

पिपरा गुचुवा

उपरोक्त नाटक का अविकल अनुवाद, समुचित रागों में गेय पद्यांशों को छोड़कर, नीचे दिया गया है। पद्यांश गद्यसंवाद एवं सूत्रधार की टिप्पणियों की छंदाभिव्यक्तियाँ हैं।

नाटक के आरंभ में सूत्रधार प्रवेश करता है जो अपने परंपरानुसार नृत्य के बाद **नांदी श्लोकों** का पाठ करता है। पद्य लीलाशुक-बिल्वमंगल के कृष्ण-कर्णामृत से लिये गये हैं। उन्हें मूल रूप में ही उद्धृत किया गया है।

(अ) कस्त्वंबाल बलानुजस्त्वमिह किं मन्मंदिराशंकया,
बुद्धं तन्नवनीता कुंभविवरे हस्तं किमर्थं न्यास:।
कर्तुं पिपीलिकापनयनं सुप्ता: किमुद्‌बोधिता।
बाला वत्सगतिं विवेक्तुम् इति संजल्पन हरि: पातु व: ॥

कौन हो तुम, बालक ? बलराम के छोटे भाई। तुम यहाँ कैसे आये ? क्या इसे अपना घर समझ लिया ? ठीक है, लेकिन तुमने मक्खन के मटके में हाथ क्यों लगाया ? उसमें से चींटियाँ निकालने के लिए। लेकिन तुमने मेरे सोये बच्चे को क्यों जगा दिया ? अपने बछड़े के बारे में पूछने के लिए। लीलारूप हरि हमारी रक्षा करें।

(ब) वदने नवनीतगंधवाहं वचने तस्करचातुरी धुरीणम्।
नयने कुहकाश्रुनाश्रितो यश्चरणे कोमलतांडवं कुमारम् ॥

जिसके मुख से मक्खन की गंध आती है, वाणी में तस्करों जैसी चातुरी है, जिसके नयनों में झूठे आँसू हैं और जिसके चरणों में नृत्य की कोमल थिरकन है—ऐसा बालक हमारी शरण बने।

[इन पद्यों के उत्तरी एवं दक्षिणी पाठों में क्षेत्र-भेद से थोड़ा अंतर है]

(अपने घर में प्रवेश करने पर गोपी कृष्ण को अंदर पाती है)

गोपी : मेरे घर में तुम कैसे, बालक ?

कृष्ण : तुम मुझे नहीं जानती ? मैं अपने प्यारे भइया बलराम का छोटा भाई हूँ।

गोपी : अच्छा, तो तुम बलराम के छोटे भाई हो। समझी। लेकिन तुम यहाँ क्यों आये ?

कृष्ण : अरी प्राण प्रिया, मैं तो इसे अपना घर समझ कर चला आया। मैं अपना रास्ता भूल गया।

गोपी : तुम यहाँ ग़लती से चले आये हो साँवरे, इसमें कोई बुराई नहीं। लेकिन तुमने मक्खन की हांडी में हाथ क्यों लगाया ?

कृष्ण : तुमने तो मुझ पर भारी दोषारोपण किया है। मैंने देखा, चीटियाँ मटके में (घुसकर) मक्खन खाती जा रही हैं। मैं बाहर उन्हें निकाल रहा हूँ।

गोपी : चलो, तुमने मेरी बड़ी सहायता की है लेकिन मैं यह जानना चाहती हूँ कि मेरे सोये बच्चे को तुमने क्यों जगाया ?

कृष्ण : अरी, मैं तो तुम्हारे बेटे के साथ आज गाय चराने गया था। अपना एक बछड़ा मैं ढूंढ़े नहीं पा रहा हूँ। तुम्हारे बेटे को मैंने उसी बछड़े के बारे में पूछने के लिए जगाया।

गोपी : तुम बड़े चतुर हो कन्हैया। मेरा मक्खन खाने के बाद अब झूठ पर झूठ बोले चले जा रहे हो। अगर तुमने मक्खन नहीं खाया तो तुम्हारे मुँह से मक्खन की गंध कैसे आ रही है ?

कृष्ण : अरी तुम सचमुच बड़े कठोर हृदयवाली नारी हो। अपनी जीभ पर क़ाबू न रख पाने के कारण तुमने सारा मक्खन खा लिया। और अब अपने पति के डर से दोष मेरे मत्थे मढ़ रही हो। तुम्हारे घर के मक्खन की परवाह कौन करता है ? जैसे कि कभी मक्खन खाने को न मिला होने पर मैं चोरी से तुम्हारे घर में ही मक्खन खाने के लिए घुस गया। अरी कठोर हृदया नारी, असली चोर तो तुम्हीं हो क्योंकि मक्खन की गंध तो तुम्हारे मुँह से आ रही है।

(यहाँ सूत्रधार के माध्यम से कवि टिप्पणी करता है : "हे नारायण, सभी कलाओं के गुरु होने पर भी, बेचारी नारी को ठगने के लिए तुमने झूठ का सहारा क्यों लिया ?")

सूत्रधार : हे सहृदय दर्शकों, कृष्ण की यह टिप्पणी सुनकर गोपी ने पाया कि उसके पास कोई चटपटा जवाब नहीं है। इस आरोप से बहुत लज्जित होकर अंततः उसने कहा :

गोपी : हे कन्हैया, मैं गाल बजाने में तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकती। तुम्हारी माँ को यह सब बताकर ही मैं जो कुछ होगा, करूँगी।

सूत्रधार : इस प्रकार चीखते-चिल्लाते उसने सभी गोपियों को जुटाया और यशोदा से कृष्ण की शिकायत की।

एक गोपी : हे माँ यशोदा, हमारे घरों में अपने बेटे कन्हैया की करतूत सुनो। तुम्हारे बेटे की वजह से हमारे घरों में दही, दूध, मक्खन कुछ भी सुरक्षित नहीं है। अपने साथियों के साथ कृष्ण उनकी चोरी करता रहता है।

दूसरी गोपी : हे यशोदा, अपने बेटे के कारनामे तो सुनो। मैं तो पार नहीं पा सकती। मेरा सारा मक्खन चोरी से खा जाने के बाद कृष्ण ने मेरा मटका भी फोड़ दिया।

तीसरी गोपी : हे माँ यशोदा, मैंने कृष्ण को मक्खन चुराते रँगे हाथ पकड़ा, लेकिन उसने अपनी हाजिरजवाबी से मुझे चुप कर दिया। उसने जो कुछ कहा, उसे दुहराते मुझे बड़ी लाज आती है। उसकी करतूतों का कोई अन्त नहीं है। उसकी कारगुजारियाँ हमारी बर्दाश्त से बाहर हैं।

यशोदा : बेटे, अबसे तू कभी किसी गोपी के घर में नहीं घुसोगे। तुम्हारे कारनामों की इन शिकायतों से मैं तंग आ गई हूँ। तुम्हारे पिता सभी ग्वालों के राजा हैं और मैं उनकी पत्नी हूँ। ऐसे घर में जन्म लेकर भी तुम नटखट के नटखट ही रहे। क्या है वह, जो हमारे घर में नहीं है ? दूध, दही, मक्खन, मिठाई या और कुछ ? क्या मैं ये चीज़ें तुमको नहीं देती ? या फिर तुमने ये चीज़ें कभी खाई नहीं ? एक भिखारी के बच्चे की भाँति तुम घर-घर खाने की खोज में भटकते हो। मैं तुम्हें आज ऐसा सबक सिखाऊँगी कि तुम किसी ग्वालन के घर जाने की हिम्मत नहीं करोगे।

सूत्रधार : हे माँ यशोदा, किसकी ताड़ना कर रही हो तुम ? वह तो सारे विश्व की आत्मा है। तुम उस पर नियंत्रण रखना चाहती हो जिसके आदेश का पालन ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य देवता बड़ी विनम्रता से करते हैं। यह उचित नहीं है।

कृष्ण : हे माँ, मुझे डाँटो-फटकारो मत। मैं बहुत अपमान और आरोप सह चुका। अब मेरी बात सुनो। एक छोटा-सा मटका जो औने-पौने दाम में मिल जाता है, फोड़कर मैंने कौन-सा

बड़ा अपराध कर दिया है ? अगर तुम इतना भी नुकसान बरदाश्त नहीं कर सकतीं तो मुझसे कोई बड़ा नुकसान हो जाने पर तुम उसे कैसे सहन कर पाओगी ? तुम तो ऐसा बर्ताव करती हो जैसे किसी राजा-महाराजा की बेटी हो। तुम तो काफी बड़ी उमर तक निःसंतान ही रही और तुम्हारा बेटा बनकर मैंने तुम्हारे बाँझपन का कलंक मिटाया। तुम्हारा कठोर स्वभाव जानकर ही मैंने तुम्हारी युवावस्था में जन्म नहीं लिया। एक साधारण औरत भी अपने बेटे की भावना को समझती है लेकिन अधेड़ हो जाने पर तुम अपने बेटे की भावनाओं को समझ नहीं पातीं। तुमने सारे संसार में मुझे माखनचोर का ठप्पा लगा दिया है। अब और कौन-सा नुकसान बाक़ी है ? ग्वालनरेश का बेटा होकर भी मैं अपनी आजीविका घने और कँटीले जंगलों में गाय चराकर पूरी करता हूँ। ऐसी परेशानियों से गुज़रने पर भी मैं अपनी माँ का दुलारा नहीं बना पाया। मैं यह सारी बेइज्ज़ती और बदनामी चुपचाप सहता रहा हूँ फिर भी मुझे नटखट ही माना जाता है। मैं अब तुम्हारे द्वारा अपना अपमान सहन नहीं करूँगा। मैं राजा कंस की नगरी मथुरा चला जाऊँगा। तब तुम्हारे नाज़-नखरे ग़ायब हो जायेंगे और मेरे न होने पर तुम रोती रहोगी।

(माधव कहते हैं : "हे मेरे प्रभु, अब और कठोर शब्द न निकालो। तुम्हारी माँ को बहुत दुःख होगा। साधारण नश्वर मनुष्यों की क्या कहें, देवता भी तुम्हारी अपरंपार शक्ति की सीमा नहीं जानते। हे महाप्रभु, मैं तुम्हारे चरणों पर करोड़ों बार नमन करता हूँ।)

संदर्भ-सूची

माधवदेव की रचनाएँ

माधवदेव की रचनाओं के अनेक लोकोपयोगी संस्करण हुए हैं। प्रयुक्त संस्करणों का उल्लेख निम्न प्रकार है :

1. **अंकावली** : इसमें शंकरदेव, माधवदेव, गोपालदेव, रामचरण ठाकुर, दैत्यारि ठाकुर तथा भूषण द्विज लिखित इक्कीस नाटक हैं। अंग्रेज़ी में एक लंबी प्रस्तावना के साथ इसका संकलन और संपादन (गौहाटी, 1950) के. आर. मेधी ने किया था।

2. **अंकिया नाट** : शंकरदेव, माधवदेव तथा गोपाल आता के 15 नाटकों का संकलन। बी० के० बरुआ द्वारा संपादित संस्करण इसका प्रकाशन (1940) गौहाटी के इतिहास एवं पुरातत्त्वविद्या विभाग ने किया है।

3. **बड़गीत** : (शंकरदेव तथा माधवदेव का गीत संकलन) एच० दत्ता बरुआ, 1950।

4. **भक्ति-रत्नावली** : प्रकाशक एच. एन. दत्ता बरुआ, नलबाड़ी, 1949

5. **जन्म-रहस्य** : संपादक एवं प्रकाशक एच. एन. दत्ता. बरुआ, नलबाड़ी, 1948।

6. **नामघोष** : संपादक, एम. नियोग, गौहाटी, 1962

7. **नाम-मालिका** : प्रकाशक अहरुराम अतइ, बरपेटा, 1936

8. **राजसूय काव्य** : के. आर. मेधी की प्रस्तावना के साथ, दत्ता बरुआ कंपनी द्वारा प्रकाशित। गौहाटी, 1949

9. **श्री श्री माधवेश्वर वाक्यामृत** : यह माधवदेव की समस्त रचनाओं का संकलन है। संपादन व प्रकाशन : पूर्णचंद्र गोस्वामी, गोलाघाट, 1959

माधवदेव के जीवन एवं कृतित्व पर असमिया रचनाएँ

प्रारंभिक रचनाएँ

1. रामानंद द्विज, **गुरुचरित**, मुख्यत: शंकरदेव से संबंधित जीवनी-रचना, जिसमें माधवदेव पर भी सामग्री मिलती है ।

2. यू. सी. लेखारु (सं०), **कथा-गुरुचरित**, सत्रहवीं सदी की एक वृहत् गद्य-रचना, जिसमें शंकर, माधव तथा उनके लघुत्तर समकालीनों के जीवन एवं कार्यकलापों का निरूपण है। प्रकाशक, एच. दत्ता बरुआ, नलबाड़ी, 1952 ई.

3. दैत्यारि ठाकुर : **शंकरदेव-माधवदेवार चरित्र** सत्रहवीं सदी के पूर्वार्ध की एक कृति, जो दोनों वैष्णव सुधारकों के जीवन वृत्त को समर्पित है। संपादक : आर. एम. नाथ, 1947 ई.

4. राम चरण ठाकुर **शंकरचरित्र**, संपादक, प्रकाशक हलीराम महंता, 1925 ई. । सामान्य धारणा है कि ये रामचरण दैत्यारि ठाकुर के पिता थे, लेकिन हाल के शोध ने सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ये माधवदेव के भतीजे दैत्यारि से भिन्न थे।

5. भूषण द्विज, **श्री शंकरदेव**, सत्रहवीं सदी की रचना जिसमें शंकरदेव तथा माधवदेव के संबंध में प्रचुर सामग्री है ।

यह ध्यान देने की बात है कि आरंभिक असमिया साहित्य में माधवदेव के ही जीवन एवं क्रिया-कलाप का विशेष अनुशीलन करनेवाली कोई पृथक् जीवनी पुस्तक नहीं है ।

असमिया में आधुनिक रचनाएँ

1. एल. एन. बेजबरुआ, **शंकरदेव आरु माधवदेव**, 1964 (दूसरा संस्करण)
2. डिम्बेश्वर नियोग, **असमिया साहित्यार बुरांजी**, जोरहाट, 1957
3. महेश्वर नियोग, श्री शंकरदेव, प्रकाशक : बी. एन. दत्ता बरुआ, 1951
4. महेश्वर नियोग, **असमिया साहित्यार रूपरेखा**, गौहाटी, 1962
5. अर्जुन चंद्र दास, **महापुरुषीय धर्मार पंचरत्न**, बरपेटा, 1971
6. बापचंद्र महंता, **नामघोषार तत्त्वदर्शन**, जोरहाट, 1978
7. एस. एन. शर्मा, **असमिया नाट्य साहित्य**, गौहाटी, 1981
8. एस. एन. शर्मा, **असमिया साहित्यार समीक्षात्मक इतिवृत्त**, गौहाटी 1983

अंग्रेजी में रचनाएँ

1. बी. के. बरुआ, **हिस्ट्री आफ़ असमीज़ लिटरेचर**, साहित्य अकादेमी, 1964
2. हेम बरुआ, **असमीज़ लिटरेचर**, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत, 1965
3. बाणीकांत काकती (सं०) **आस्पेक्ट्स आफ अर्ली असमीफ़ लिटरेचर**, गौहाटी विश्वविद्यालय, 1953
4. महेश्वर नियोग, **शंकरदेव ऐंड हिज एज़**, गौहाटी विश्वविद्यालय, 1953
5. एस. एन. शर्मा **असमीज लिटरेचर**, ओटो हरसोवित्स, वीसबाडेन, 1976
6. एस० एन० शर्मा, **द नियो-वैष्णवाइट मूवमेंट ऐंड द सत्र इंस्टीट्यूशन आफ़ असम**, गौहाटी विश्वविद्यालय, 1966

हिंदी रचना

कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, **माधवदेव**, गौहाटा, 1981

इस पुस्तकमाला के सम्बन्ध में

भारतीय साहित्य के इतिहास के निर्माण की दीर्घ यात्रा में जिन महान् प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से '**भारतीय साहित्य के निर्माता**' नामक पुस्तकमाला का प्रकाशन आरम्भ किया था, जिसके अन्तर्गत अब तक हिन्दी में नम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ	हेम बरुआ
माधवदेव	सत्येन्द्रनाथ शर्मा
बंकिमचन्द्र चटर्जी	सुबोधचन्द्र सेनगुप्त
बुद्धदेव बसु	अलोकरंजन दासगुप्त
चण्डीदास	सुकुमार सेन
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	हिरण्मय बनर्जी
जीवनानन्द दास	चिदानन्द दासगुप्त
काज़ी नज़रुल इस्लाम	गोपाल हाल्दार
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर	नारायण चौधुरी
माणिक बन्द्योपाध्याय	सरोजमोहन मित्र
माईकेल मधुसूदन दत्त	अमलेन्दु बोस
प्रमथ चौधुरी	अरुणकुमार मुखोपाध्याय
राजा राममोहन राय	सौम्येन्द्रनाथ टैगोर
ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	महाश्वेता देवी
श्रीअरविन्द	मनोज दास
सरोजिनी नायडू	पद्मिनी सेनगुप्त
तरुदत्त	पद्मिनी सेनगुप्त
गोवर्धनराम	रमणलाल जोशी
मेघाणी	वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी
नानालाल	उमेदभाई मणियार
नर्मदाशंकर	गुलाबदास ब्रोकर
बाबूराव विष्णु पराड़कर	ठाकुर प्रसाद सिंह
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल
बिहारी	बच्चन सिंह
चंद्रधर शर्मा गुलेरी	मस्तराम कपूर

दादू दयाल	राम वक्ष
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
घनानन्द	लल्लन राय
हरिऔध	मुकुन्द देव शर्मा
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जायसी	परमानन्द श्रीवास्तव
कबीर	प्रभाकर माचवे
काका कालेलकर	विष्णु प्रभाकर
निराला	परमानन्द श्रीवास्तव
महावीरप्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशंकर
प्रेमचन्द	प्रकाशचन्द्र गुप्त
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल मैनी
श्रीधर पाठक	रघुवंश
श्यामसुन्दर दास	सुधाकर पाण्डेय
सुभद्रा कुमारी चौहान	सुधा चौहान
सुमित्रानन्दन पन्त	कृष्णदत्त पालीवाल
वृन्दावनलाल वर्मा	राजीव सक्सेना
बी. एम. श्रीकंठय्य	ए. एन. मूर्तिराव
बसवेश्वर	एच. थिप्पेरुद्रस्वामी
विद्यापति	रमानाथ झा
ए. आर. राजराज वर्मा	के. एम. जॉर्ज
चन्दुमेनन	टी. सी. शंकर मेनन
कुमारन् आशान	के. एम. जॉर्ज
महाकवि उल्लूर	सुकुमार अषिकोड
वल्लत्तोल	वी. हृदयकुमारी
दत्तकवि	अनुराधा पोतदार
ज्ञानदेव	पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे
हरिनारायण आप्टे	रामचन्द्र भिकाजी जोशी
केशवसुत	प्रभाकर माचवे
नामदेव	माधव गोपाल देशमुख
नरसिंह चिंतामण केलकर	रामचन्द्र माधव गोले
श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे

तुकाराम	भालचन्द्र नेमाड़े
फ़कीरमोहन सेनापति	मायाधर मानसिंह
राधानाथ राय	गोपीनाथ महन्ती
सरलादास	कृष्णचन्द्र पाणिग्राही
भाई वीर सिंह	हरबंस सिंह
दुरसा आढ़ा	रावत सारस्वत
प्रिथीराज राठौड़	रावत सारस्वत
बारहठ ईसरदास	हीरालाल माहेश्वरी
जाम्भोजी	हीरालाल माहेश्वरी
मुँहता नैणसी	बृजमोहन जावलिया
सूर्यमल्ल मिश्रण	विष्णुदत्त शर्मा
बाणभट्ट	के. कृष्णमूर्ति
भवभूति	गो. के. भट
जयदेव	सुनीतिकुमार चटर्जी
कल्हण	सोमनाथ धर
क्षेमेन्द्र	ब्रजमोहन चतुर्वेदी
माघ कवि	चण्डिका प्रसाद शुक्ल
सचल सरमस्त	कल्याण बू. आडवाणी
शाह लतीफ़	कल्याण बू. आडवाणी
भारती	प्रेमा नन्दकुमार
इलंगो अडिगल	मु. वरदराजन
कम्बन	एस. महाराजन
माणिक्कवाचकर	जी. वंमीकनाथन
पोतन्ना	दिवाकर्ल वेंकटावधानी
वेदम वेंकटराय शास्त्री	वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ)
गुरजाड	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वीरेशलिंगम्	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वेमना	नार्ल वेंकटेश्वर राव
ग़ालिब	मु. मुजीब